अंक-18
वर्ष-2024

ISSN No. 2249-9121

कन्या महा विद्यालय जालन्धर
असतो मा सद् गमय
स्था. 1886

उन्मीलन

(शोध और सृजन)

Kanya Maha Vidyalaya (Autonomous) The Heritage Institution
No. 1 College in Punjab
Top National Rankings

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
भारत की विरासत संस्था
कन्या महाविद्यालय, (स्वायत्तशासी)
जालन्धर।

शीर्ष राज्य और राष्ट्रीय रैंकिंग
डी बी टी, भारत सरकार द्वारा 'स्टार कॉलेज स्टेटस'
भारत सरकार द्वारा 'क्यूरी' और 'फिस्ट' ग्रांट प्राप्त करने वाला प्रथम कॉलेज

Re-accredited 'A' by NAAC-UGC

College with Potential for Excellence Status Conferred by UGC

ISSN-2249-9121

उन्मीलन

(शोध और सृजन)

अंक - 18 वर्ष- 2024

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

भारत की विरासत संस्था
कन्या महाविद्यालय (स्वायत्तशासी), जालन्धर।

शीर्ष राज्य और राष्ट्रीय रैंकिंग

डी बी टी, भारत सरकार द्वारा 'स्टार कॉलेज स्टेटस'
भारत सरकार द्वारा 'क्यूरी' और 'फिस्ट' ग्रांट प्राप्त करने वाला प्रथम कॉलेज

सन्देश

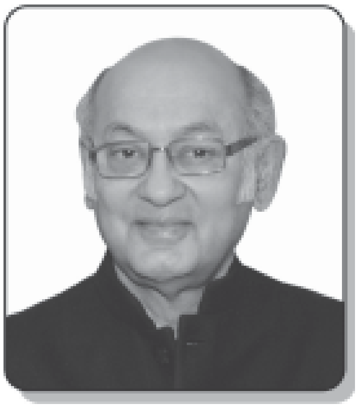

यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है कि उन्मीलन् शोध और सृजन पत्रिका का नवीन अंक प्रकाशित हो रहा है। इस निष्ठा और अविरल श्रम के लिए संपादकीय टीम को मुबारकबाद और शुभकामनाएं। शब्द एवं साहित्य की यात्रा बहुत जिम्मेदारी की यात्रा है यह वह साधना है जो हमें सत्य की और लेकर जाती है। ए.आई के इस युग में जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने हमारे जीवन पर चौतरफ़ा प्रभाव डाला है तो शोध और साहित्य भी इससे अछूते नहीं रह सकते। ऐसे समय में आलोचकों और संपादकों की जिम्मेदारी पहले से बहुत ज्यादा बढ़ गई है कि वह अनुभूति, संवेदना और विचार की मौलिकता और रचनात्मकता को बनाए रखने का हर संभव प्रयास करें। उन्मीलन सत्य मौलिकता और रचनात्मक के इस सफर में मील का पत्थर बने और अपने रास्ते पर वह इसी तरह आगे बढ़ते हुए आलोचना जगत में अपनी पहचान को बनाने में सक्षम हो। इसी शुभेच्छा और शुभकामना के साथ बहुत बहुत मुबारकबाद।

चन्द्रमोहन
प्रधान, आर्य शिक्षा मण्डल

सन्देश

कन्या महाविद्यालय परंपरा और आधुनिकता के समन्वय का साक्षात् उदाहरण है। हम समय के साथ कदम मिलाकर चले पर दिशा सदा अपनी संस्कृति और परंपरा से ली। यही कारण है कि उच्च शिक्षा में गुणवत्ता की कसौटी पर हमने तीन शताब्दियों में विस्तृत इस यात्रा में हमने कभी समझौता नहीं किया। उन्मीलन शोध और सृजन का सफ़र भी ऐसी ही चुनौतियों से राह बनाते हुए गुज़रने का है। बदलते समय के साथ आज भाषा और साहित्य बहुत सारे प्रभावों और उतार-चढ़ाव के साथ बाबस्ता है। सर्जक और आलोचक की भूमिकाएं भी इन प्रभावों के बीच आकार ले रहीं हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और सोशल मीडिया के इस युग में साहित्य के लिए रुचि को बनाए रखने के साथ साहित्य में जीवन के नए रूपों की अभिव्यक्ति और उनका सजग एवं सार्थक मूल्यांकन एक जिम्मेदारी से भरा कार्य है। 'उन्मीलन-शोध और सृजन' इस दिशा में अपनी भूमिका की पहचान करता हुआ सजग रूप से गतिमान है। सुयोग्य परीक्षक मंडल के सहयोग से हम बदल रहे समय के साथ शोध और सृजन की चुनौतियों को समझते हुए इसके स्तर और सामग्री को समयानुरुप बनाने में प्रयासशील होंगे। हिन्दी विभाग को 'उन्मीलन-शोध और सृजन'के इस अंक के लिए बहुत-बहुत बधाई।

प्रो.डॉ. अतिमा शर्मा द्विवेदी
(प्राचार्या)

साहित्यिक वैचारिकी

संरक्षक

प्रो. (डॉ.) अतिमा शर्मा द्विवेदी

(प्राचार्या, कन्या महाविद्यालय (स्वायत्तशासी), जालंधर)

परामर्श मण्डल

- श्री चन्द्रमोहन (जालंधर)
- प्रो. सुरेश सेठ (जालंधर)
- प्रो. हरमहेन्द्र सिंह बेदी (अमृतसर)
- श्रीमती चित्रा मुद्‌गल (दिल्ली)
- प्रो चमन लाल गुप्त (शिमला)
- डॉ. महेश दिवाकर (मुरादाबाद)
- डॉ. विनोद शाही (गुड़गांव)

मूल्यांकन समिति

- डॉ. पूरनचंद टण्डन (दिल्ली)
- डॉ. हरीश सेठी (दिल्ली)
- डॉ. भवानी सिंह (शिमला)
- डॉ. अशोक सभ्रवाल (चण्डीगढ़)
- डॉ. राजेन्द्र टोकी (खन्ना)
- डॉ. धर्मपाल साहिल (होशियारपुर)
- डॉ. सुनील कुमार (अमृतसर)
- डॉ. वीणा विज उदित (जालंधर)

मुख्य सम्पादक

- डॉ. (श्रीमती) विनोद कालरा

संपादक द्वय

- डॉ. रूपिका शर्मा
- डॉ. अनुशोभा

सम्पादकीय कार्यालय

मुख्य सम्पादक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कन्या महाविद्यालय, विद्यालय मार्ग,
जालंधर- 144004 (पंजाब)
दूरभाष- 094175-22232
ई-मेल पता- vinod_kalra66@yahoo.com

मुखपृष्ठ सज्जा एवं प्रकाशक: नव प्रिंटर्ज एण्ड डिज़ाइनर्ज
UNMEELAN (SHODH AUR SRIJAN)
ISSN- 2249-9121
A Literary yearly Research Journal
Language : Hindi
Published by: Nav Printers & Designers

प्रकाशन संबंधी महत्वपूर्ण निर्देश

- उन्मीलन (शोध और सृजन) परामर्श मण्डल एवं विषय विशेषज्ञों के मार्गदर्शन व दिशा निर्देश से प्रेरित साहित्यिक वैचारिकी की वार्षिक शोध एवं सृजन पत्रिका है। मूल्यांकन- समिति द्वारा पारित शोध-पत्र ही इस पत्रिका में प्रकाशित होंगे।
- अपना शोधालेख (संदर्भ सहित) 2500 से 3000 शब्दों में यूनिकोड फान्ट 13 साइज में भेजें।
- आलेख के साथ अपना नाम, पद, विभाग, संस्था का नाम, मोबाइल नम्बर, ई-मेल आई डी व स्थायी पता अवश्य लिखें।
- रचना की जिम्मेदारी पूर्णतया लेखक की होगी।
- रचना में प्रकाशित लेखक के विचारों के साथ संपादक की सहमति आवश्यक नहीं है।
- सम्पादक के पास रचना-सम्पादन के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।
- अपना आलेख इस ई-मेल पर भेजें – unmeelan.hindi@gmail.com

'उन्मीलन (शोध और सृजन)' वार्षिक वैचारिकी की शोध एवं सृजन पत्रिका है। यह पत्रिका वर्ष 2008 से निरंतर आई एस एस एन नंबर-2249-9121 के साथ प्रकाशित हो रही है। इसके अंतर्गत प्रपत्रों, सृजनात्मक रचनाओं, पुस्तक समीक्षाओं और साक्षात्कार आदि का प्रकाशन किया जाता है। इस शोध पत्रिका को इसी अंक से रेफरीड एवं पीयर रिव्यूड किया जा रहा है। इसमें मूल्यांकन समिति द्वारा पारित शोध पत्र ही प्रकाशित होंगे। 'उन्मीलन (शोध और सृजन)' पत्रिका की संरक्षक कन्या महाविद्यालय की प्राचार्या प्रो. डॉ. अतिमा शर्मा द्विवेदी हैं। इस पत्रिका की मुख्य सम्पादक डॉ. (श्रीमती) विनोद कालरा और सम्पादक द्वय डॉ. रूपिका और डॉ. अनुशोभा है। रचना की मौलिकता की जिम्मेदारी पूर्णतया लेखक की होगी। यदि किसी आलेख में साहित्यिक चोरी पाई जाती है तो उसका ज़िम्मेदार स्वयं लेखक होगा। रचना में प्रकाशित लेखक के विचारों के साथ सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका अनियमितकालीन, अवैतनिक एवं अव्यावसायिक पत्रिका है। प्रेषक के शोध पत्रों अथवा रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।

सम्पादकीय

(आस्था, संस्कृति और एकता का संगम-महाकुंभ)

यह वर्ष महाकुंभ के कारण अभूतपूर्व रहा। प्रयागराज के तट पर लाखों करोड़ों की भीड़ स्नान करने लिए बेसब्र, मुंह में से प्रस्फुटित होते अनेक भक्तिपरक शब्द, सभी नियमों का पालन करती भीड़ यूं लगता था मानो सारा विश्व एक स्थल पर एकत्र हो गया हो। बिना किसी जातिगत व ऊंच नीच के भेद भाव के सभी आपस में मिल रहे थे।

यदि आप भारत के गांव-कस्बों से गुजरें तो ऐसे असंख्य लोग मिल जाएंगे, जो प्रातः स्नान करते समय ***'गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन् संनिधि कुरु॥'*** का मंत्रोच्चार कर रहे होंगे। इस मंत्र का अर्थ है? हे यमुना ? हे गोदावरी, हे सरस्वती, हे नर्मदा, हे सिंधु और हे कावेरी, हमारे जल में उपस्थित होकर इसे पवित्र करो। स्नान के नित्यकर्म में देश की सभी पवित्र नदियों का आह्वान यह बताता है कि भारतभूमि के लोगों की नदियों के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा है। याद आता है पूरब और पश्चिम का वह गीत

इतनी ममता नदियों को भी जहां माता कह के बुलाते हैं।
इतना आदर इन्सान तो क्या पत्थर भी पूजे जाते हैं।।

विश्व की लगभग सभी सभ्यताओं का जन्म नदी तटों पर हुआ है, लेकिन भारत तो नदी संस्कृति का ही देश है। उत्तर में सिंधु से लेकर दक्षिण में कृष्णा-कावेरी तक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र से लेकर पश्चिम में नर्मदा तक भारत की ये पुण्य सलिलाएं अनंतकाल से कोटि-कोटि भारतवासियों के जीवन का उद्धार करती रही हैं। ये नदियां मां की तरह ही हमारा भरण-पोषण करती हैं। हम जब भी समस्याओं में उलझे होते हैं तो इन नदी रूपी माताओं के निकट आकर शांति की तलाश करते हैं और अपनी इह लौकिक यात्रा को समाप्त कर पारलौकिक यात्रा के लिए भी इन्हीं नदियों की गोद में पहुंचते हैं। धार्मिक रूप से तो इनका अस्तित्व है ही साथ ही ये आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा अन्य कई रूपों से भी विलक्षण मानी जाती हैं। वेदों, पुराणों और कालिदास के ग्रंथों में भी नदियों की पवित्रता को रेखांकित किया गया है।

कुंभ महापर्व, नदियों के महात्म्य का ही महापर्व है, जो विविधता में एकता प्रदर्शित करने में केंद्रीय भूमिका निभाता है। कुंभ मेला भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परंपराओं का सबसे बड़ा पर्व है। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि भगवान ब्रह्मा ने हरिद्वार, प्रयागराज, उज्जैन और नासिक चार कुंभ स्थापित किए, जिससे यह आयोजन पवित्र माना जाता है।

कुंभ का आयोजन समाज, धर्म और संस्कृक्ति के समन्वय का प्रतीक है। इसमें प्रमुख अखाड़ों के संत, महात्मा और नागा संन्यासी संसार के संपूर्ण कष्टों के निवारण हेतु तथा समाज, राष्ट्र और धर्म आदि के कल्याण के लिए अमूल्य दिव्य उपदेश प्रदान करते हैं। प्रयाग में कुंभ के तीन प्रमुख स्नान होते हैं- मकर संक्रांति और वसंत पंचमी पर। इन तीनों स्नानों में सर्वप्रथम स्नान निर्वाणी अखाड़े का, द्वितीय स्नान निरंजनी अखाड़े का और तृतीय स्नान जूना अखाड़े का होता है। इसके पश्चात् समस्त संप्रदाय के लोगों का होता है।

कुंभ-पर्व की प्राचीनता के संबंध में तो कोई नहीं, किंतु यह अवश्य महत्वपूर्ण है कि कुंभ मेले का धार्मिक रूप में श्रीगणेश किसने किया? कुछ ने यह सिद्ध किया है कि कुंभ मेले के प्रवर्तक आदि शंकराचार्य हैं। उन्होंने कुंभ पर्व के प्रचार की व्यवस्था सृष्टि के कल्याण के लिए और धार्मिक संस्कृति को सुदृढ़ करने के लिए की थी। उन्हीं के आदर्शानुसार आज भी कुंभ पर्व के चारों सुप्रसिद्ध तीर्थों में धर्म का प्रचार किया जाता है।

कुंभ का इतिहास कान्य कुब्ज के शासक सम्राट हर्षवर्धन के साथ भी जुड़ा है। हर्षवर्धन कुंभ के अवसर पर प्रयाग में ही रहकर सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करते और सभी मतावलंबियों के विचार सुनते थे। धार्मिक सहिष्णुता के साथ-साथ महाराज हर्षवर्धन इस अवसर पर अपनी दानशीलता का भी परिचय देते थे। महाराज हर्षवर्धन के त्याग और दान की परंपरा कुंभ में अब तक अक्षुण्ण चली आ रही है।

कुंभ केवल धार्मिक आयोजन नहीं, बल्कि इसका वैज्ञानिक और ज्योतिषीय पक्ष भी महत्वपूर्ण है। जब सूर्य मकर राशि में और गुरु कुंभ राशि में होते हैं, तब स्नान करने से व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम के जल में प्राकृतिक खनिज और औषधीय गुण होते हैं, जिससे यह स्नान शरीर की शुद्धि का माध्यम बनता है।

करोड़ों की संख्या में श्रद्धालुओं के आने के बावजूद यहां आधुनिक तकनीक के प्रयोग और कुशल प्रबंधन ने कुंभ मेले को विश्व का सबसे बड़ा और व्यवस्थित आयोजन बना दिया है। स्वच्छता, सुरक्षा और सुविधा का ऐसा संगम शायद ही कहीं और देखने को मिले। सरकार और प्रशासन ने इसे पर्यावरण अनुकूल बनाने के लिए विशेष प्रयास किए हैं, जिससे यह आयोजन न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय संदेश भी देता है। कुंभ सामाजिक समरसता और वैश्विक भाईचारे का प्रतीक भी है। यह 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को साकार करता है। यह पर्व हमें आत्मशुद्धि, परोपकार और सामाजिक सद्भाव का संदेश द ेता है। कुंभ के माध्यम से भारतीय संस्कृति और जीवन-दर्शन को वैश्विक स्तर पर पहचान मिली है। बहुत बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक यहां भारतीय परंपराओं को समझने और आत्मसात करने के लिए आए। कुंभ मेला भारतीय संस्कृति की गहराई, महिष्णुता और एकता का अद्भुत संगम है। यह केवल पवित्र स्नान का पर्व नहीं, बल्कि जीवन के गूढ़ रहस्यों को जानने, आत्मचिंतन करने और मानवता के प्रति समर्पण व्यक्त करने का एक अवसर भी है। भारत की सनातन परंपरा में यह आयोजन अनूठी आस्था, संस्कृति और दर्शन का परिचायक बना रहेगा।

उन्मीलन:शोध और सृजन के 18वें अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं प्रत्येक भारतीय को साधुवाद देती हूं, विशेष रूप से उन विद्वानों को जिन्होंने इस आस्थावादी संस्कृति पर शोध करने की चर्चा की। उन्मीलन के इस अंक के लिए अपने प्रपत्र भेजने वाले विद्वानों के प्रति हृदय से आभार जिन्होंने मेरे एक आग्रह पर शोध पत्र तथा रचनाएं भेजने का उत्साह दिखाया। भविष्य में भी इनसे इसी प्रकार की उम्मीद है। मैं संस्था के अध्यक्ष श्री चंद्रमोहन जी एवम प्राचार्या प्रो. (डॉ.) अतिमा शर्मा जी के समक्ष नतमस्तक हूं, जिन्होंने हमें सदा अग्रसर रहने की प्रेरणा देकर उपकृत किया है। हिंदी विभाग के प्राध्यापकों डॉ. रूपिका और डॉ. अनुशोभा के प्रति सम्पूर्ण मन से साथ देने के लिए विशेष आभार।

आगामी अंक में फिर आपका संपूर्ण सहयोग मिलेगा, इसी कामना के साथ।

- **विनोद कालरा**
अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग।

अनुक्रम

संदेश 2

श्री चन्द्रमोहन

संदेश 3

प्रो. (डॉ.) अतिमा शर्मा द्विवेदी

संपादकीय

आस्था, संस्कृति और एकता का संगम-महाकुंभ

डॉ. (श्रीमती) विनोद कालरा

शोधालेख

साधारणीकरण

प्रो. डॉ. विनोद कुमार तनेजा

साहित्य समालोचना का क्षेत्र और रिचर्ड्स का मूल्य सिद्धांत

डॉ. हरीश कुमार सेठी

रामकथा की उपादेयता

डॉ. महेश दिवाकर

किन्नर विमर्श और हिंदी साहित्य

डॉ. सपना शर्मा

मानवीय मूल्यों से ओत प्रोत राम-

डॉ. अवधेश कुमार चंसौलिया

कृष्ण काव्य परंपरा और 'कनुप्रिया'

डॉ. शारदा प्रसाद

हिमाचल प्रदेश के जन समुदाय में देवतंत्र की भूमिका

डॉ. भवानी सिंह

कबीर वाणी: आज के संदर्भ में

डॉ. देवेंद्र कुमार

हाटी समुदाय के त्योहार, उत्सव, मेले एवं पर्व

वेद सरला कुमारी

ज्योतिष शास्त्र एवं भारतीय ज्ञान परंपरा

सुश्री सरिता

आलेख

स्वामी विवेकानंद उवाच

डॉ. राजेंद्र टोकी

कविता

कविता घर

प्रो. हरमोहिंदर सिंह बेदी

पहाड़ से उतरते हुए
प्रो. हरमोहिंदर सिंह बेदी
महकते गुलाब की याद में
डॉ. राज शर्मा
रूह पर लिखी तहरीर
डॉ. सुरेश नायक
प्रेम : एक अध्यात्म नदी-पांच दृश्य
बंधुवर अवधेश सिंह
मैं कहां हूं
संतोष गर्ग 'तोष'

कहानी
मुकद्दर की पोटली
डॉ. वीणा विज उदित
वापमी
श्री सुरेश चंद्र शुक्ल 'शरद आलोक'
नौकरानी
डॉ. नीलम सेठी

साक्षात्कार
सुप्रसिद्ध लेखिका डॉ. वीणा विज उदित का प्रो. सीमा जैन द्वारा साक्षात्कार

संस्मरण
मेरे प्यार के रंग
डॉ. निर्मल जायसवाल

व्यंग्य
मेरी पड़ोसन के कुत्ते
डॉ. जवाहर धीर

यात्रा वृत्तांत
अंडर ग्राउंड ट्यूब में धड़कता लंदन का दिल
डॉ. नीलम सेठी

पुस्तक समीक्षा
मंथन से निकला अमृत अनुभव के आलोक में
श्रीमती ममता जैन

शोधालेख

साधारणीकरण

-डॉ. विनोद कुमार तनेजा

साधारणीकरण शब्द भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्य भरत के 'नाट्यशास्त्र' के छठे अध्याय में विवेचित 'रससूत्र' के विश्लेषणात्मक अध्ययन के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगादसनिष्पति' द्वारा नाटक के पात्रों के अभिनय द्वारा सहृदय सामाजिक के भावों में जिस मानसिक तृप्ति का संकेत दिया है, उसमें से 'संयोग' और 'निष्पत्ति' इन दो शब्दों के विश्लेषण को लेकर परवर्ती शास्त्रीय मनीषा में हलचल मचा दी।

यूँ तो 'रस' काव्य के संदर्भ में आनन्द स्वरूप कहा जाता है, यह माना जाता है कि लोकव्यवहार में जिस भांति स्वाद मूलक रस को पाकर सामाजिक प्रसन्न या सुखी हो जाते हैं उसी प्रकार चैतन्य रूप 'भावक' काव्य द्वारा उपस्थित भावचित्र को प्राप्त कर आनन्दमय हो जाता है। यह आनन्द 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहलाता है। अग्निपुराण में कहा गया है-

आनन्दः सहजस्तस्य व्यजते स कदाचन।'
'व्यक्तिः सा तस्य चैतन्य चमत्कार रसः इया।।'

अर्थात् वह आनन्द किसी समय प्रकट हो जाया करता है और उस आनन्द की वह अभिव्यक्ति चैतन्य, चमत्कार अथवा रस नाम से जानी जाती है।

अग्निपुराण के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रस आत्मा की अभिव्यक्ति का रूप है और वह आनन्दमय है। रस वस्तुतः आनन्दानुभूति की वह उदात्त अवस्था है जिसमें व्यक्तिगत सत्ता का लोप होकर हृदय विश्वात्मा के साथ तदाकार हो जाता है। अपनी अन्याश्रित वृत्ति के द्वारा बाह्य जगत् को अन्तर्भूत कर स्वाश्रित वृत्ति से मन स्वतः आनन्दमय हो जाता है। रसानुभूति की अवस्था में हृदय जीवन और जगत् के सामान्य संबंधों से मुक्त हो जाता है। इसी मुक्तावस्था की स्थिति में किसका संयोग होता है और कहा निष्पत्ति होती है को लेकर नवम् शति के उस काल के वैचारिक मंथन केन्द्र कश्मीर के मनीषी मंडल के वैचारिक ने विचार किया। इनमें चार सिद्धांत परवर्ती शास्त्रीय मनीषा में मान्य हुए। इन चारों में प्रथम तीन की रचनाओं के नामोल्लेख मात्र उपलब्ध होते हैं।

आचार्य भरत के रससूत्र पर चिन्तन करते हुए 'संयोग' तथा 'निष्पत्ति' पर सर्वप्रथम नवम् शती के पूर्वार्द्ध में उपस्थित आचार्य भट्ट लोल्लट के 'उत्पत्तिवाद' का उल्लेख मिलता है। इनके विचार मीमांसा दर्शन पर आधारित है। इन्होंने रससूत्र में उल्लिखित 'संयोग' का अर्थ संबंध उत्पाद्योत्पादक, गम्यगमक और पोष्यपोषक भाव से करते हुए 'निष्पत्ति' का उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुष्टि के रूप में करते हुए इस संदर्भ में अपने सिद्धांत 'आरोपवाद' की स्थापना की।

नवम् शती के मध्य में आचार्य भट्ट लोल्लट के मीमांसा दर्शन पर आधारित सिद्धांत के स्थान पर आचार्य भरत के रससूत्र की व्याख्या न्याय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में करते हुए रस निष्पत्ति में अनुमाप्य अनुमापक' संबंध मानते हुए 'अनुमानबाद' की स्थापना की जिसमें माना गया कि सामाजिकों को अनुमति ज्ञान के कारण ही रस बोध होता है।

नवम् तथा दशम् शती के सन्धि काल में पूर्ववर्ती दोनों सैद्धान्तिक विश्लेषणों की आलोचना करते हुए आचार्य भट्टनायक ने सांख्यदर्शन के परिप्रेक्ष्य में रससूत्र की व्याख्या की। आचार्य ने काव्यानंद को प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर रस का विषय मानते हुए आरोप तथा अनुमान का खंडन किया और भोज्य-भोजक भाव सम्बन्ध को मान्यता देते हुए 'भोगवाद' की संस्तुति की। आपने अभिधा-भावना और भोग को काव्य की शब्दात्मक क्रियाएँ मानते हुए स्पष्ट किया कि अभिधा से काव्य का अर्थ, भावना से अर्थ का अनुसंधान अर्थ का पुनः पुनः चिन्तन किया जाता है। इस स्थिति में काव्य वर्णित नायक नायिका विशेष न रहकर साधारण हो जाते हैं। इसमें 'अयं निजः परोवेति' का भेद नहीं रहता। 'कवि/पात्र के इस व्यापार का नाम 'साधारणीकरण' है, और इसी से काव्य रस का भोग भावक करता है।

आचार्य भरत के रससूत्र में संयोग और निष्पत्ति के संदर्भ में आरोप, अनुमान तथा भोग की सम्यक् समीक्षा करते हुए आगे आचार्य अभिनवगुप्त ने 'अभिव्यक्ति' को अधिक महत्त्व दिया। आचार्य अभिनवगुप्त ने रससूत्र के स्पष्टीकरण में शैवदर्शन के आधार पर संयोग

का अर्थ व्यंग्य-व्यंजक, प्रकाश्य-प्रकाशक के रूप में करते हुए निष्पत्ति को अभिव्यक्ति माना। इस संदर्भ में एक अन्य पक्ष भी उल्लेखनीय है कि आचार्य की रचना 'अभिनवभारती' की प्रति उपलब्ध रही जबकि अन्य तीन सैद्धान्तिकों के विचारों की चर्चा तो की गई पर उनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई। परिणामत: आगे चलकर रस सिद्धांत की चर्चा में अभिनवगुप्त के सिद्धांतों को ही अधिमान देते हुए मनीषी वर्ग में विचार विनिमय हुआ।

आचार्य अभिनवगुप्त ने आचार्य भट्टनायक के द्वारा प्रतिपादित साधारणीकरण को व्यंजना के विभावन व्यापार के रूप में विश्लेषित किया। आचार्य भट्टनायक के साधारणीकरण की चर्चा परवर्ती काल में विद्वान मंडली में गहरी पैठ के साथ हुई।

साधारणीकरण शब्द का संयोजन 'च्वि' प्रत्यय के योग से हुआ है। 'साधारण च्वि किरण' 'साधारणीकरण', च्वि प्रत्यय का प्रयोग 'अमूत्तदभावे' अर्थात् 'जो वैसा नहीं उसे वैसा कर देना' के संदर्भ में होता है। इस दृष्टि से साधारणीकरण का अर्थ है 'जो साधारण नहीं उसे साधारण कर देना' होता है।

साधारणीकरण सिद्धांत के प्रस्तोता आचार्य भट्टनायक का लेखन तो उपलब्ध नहीं पर उनके सैद्धान्तिक विचारों की समीक्षात्मक चर्चा परवर्ती आचार्यों-अभिनवगुप्त, महिमभट्ट, हेमचन्द्र आदि की रचनाओं में उपलब्ध होती है।

इस उपलब्ध सामग्री के आधार पर स्पष्ट होता है कि आचार्य भट्टनायक ने भावकत्व और इस साधारणीकरण द्वारा स्थायी भाव तथा विभावादि का साधारणीकरण होता है--

'भावकत्वम् साधारणीकरणम्।'

'तेन हि व्यापारेण विभावादय: स्थायिन: क्रियन्ते।'

यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि साधारणीकरण भावकत्व व्यापार है। इसी भावकत्व व्यापार द्वारा भाव्यभान स्थायी भाव रस रूप में परिणत हो जाता है। इस स्थिति तक पहुँचने में 'भावक' का विशिष्टता से मुक्त होना आवश्यक है, उसे साधारण रूप में आना ही साधारणीकरण है जो रसास्वादन से पूर्व की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया रस के विभिन्न अवयवों को अपनी-अपनी विशिष्टताओं से मुक्त कर आस्वाद्य रूप में प्रस्तुत कर देती है।

आचार्य भट्टनायक के साधारणीकरण संबंधित वैचारिकता पर विचार करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने स्पष्ट किया कि 'विभावादि साधारणीकरणात्मकता अभिघातो द्वितीयेनाशेन भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानो रस भोगेत परं भुज्यते इति।' इस कथन से स्पष्ट होता है कि आचार्य के अनुसार 'साधारणीकरण वैयक्तिक नहीं बल्कि सामूहिक क्रिया है' और समस्त 'भावक-जन' ही मुक्त भाव का सामूहिक अनुभव करते हैं। इस प्रकार साधारणीकरण से अभिप्राय 'काव्य के भावन द्वारा भावक के भाव की सामान्य भूमि पर पहुँचना और इस अवस्था में विशेष वस्तु व्यापार का सामान्य जान पड़ना है'।

आचार्य अभिनवगुप्त के बाद इस चिन्तन परंपरा में आचार्य धनंजय, मम्मट, गोविन्द ठाकुर, विश्वनाथ तथा पंडितराज जगनाथ जी के नाम आते हैं। इन सभी की मान्यताओं का समाहार करते हुए कहा जा सकता है कि इन्होंने काव्यानंद में व्यक्तिगत रागद्वेष को बाधक मानते हुए इस आनन्द की प्राप्ति के लिए 'लौकिक बाधाओं से मुक्ति' को अनिवार्य माना। विशिष्टता की भूमिका - छोड़कर सामान्य स्थिति आने पर ही रसास्वादन सम्भव है और यही साधारणीकरण है क्योंकि आचार्य गोविन्द ठाकुर मानते हैं कि 'साधारणीकरण के उपरान्त ही सहृदय को रस की अनुभूति होती है। पंडितराज जगन्नाथ ने आचार्य विश्वनाथ के साधारणीकरण संबंधित विचारों की पुष्टि करते हुए 'आश्रय के साथ सहृदय के तादाम्य' को विशेष महत्व दिया है।

संस्कृत चिन्तनोपरान्त एक लम्बे अन्तराल के बाद आधुनिक युग में आकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के 1933 में प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थ में सम्मिलित 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' लेख से हिन्दी जगत् में काव्यशास्त्रीय चिन्तन धारा के इस पक्ष पर पुन: बातचीत शुरू हुई। आचार्य शुक्ल के साथ पंडित केशवप्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाबराय, पंडित रामदहिन मिश्र के साथ आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, प्रोफेसर नगेन्द्र, प्रोफेसर निर्मला जैन, प्रोफेसर राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ शंकरदेव अवतरे और प्रोफेसर तारकनाथ बाली आदि ने साधारणीकरण के सैद्धान्तिक पक्ष पर चर्चा की है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने अपने निबन्ध 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' में इस विषय पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया है। उनकी इस संबंध में मान्यता है कि 'साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति विशेष या वस्तु विशेष आती है, वह जैसे काव्य में वर्णित आश्रय के भाव का आलम्बन होती है, वैसे ही सब सहदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलम्बन हो जाती है'। यहाँ शुक्ल जी आलम्बन धर्म का साधारणीकरण स्वीकार करते हैं। शुक्ल जी ने यह माना है कि 'कल्पना

में मूर्ति तो विशेष की ही होगी पर वह मूर्ति ऐसी होगी जो प्रस्तुत भाव का आलम्बन हो सके, जो उसी भाव को पाठक या श्रोता के मन में भी जगाए जिसकी व्यंजना आश्रय अथवा कवि करता है'। शुक्ल जी के अनुसार आलम्बन (व्यक्ति विशेष) की विशिष्टता स्थिर रहती है पर उसके सामान्य गुण प्रेक्षक के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

आचार्य केशव प्रसाद मिश्र जी ने आचार्य भट्टनायक के मुक्तिवादी सिद्धान्तानुरूप साधारणीकरण में कवि या भावुक की चित्तवृत्ति के परिप्रेक्ष्य में इस सिद्धांत की व्याख्या की।

श्यामसुंदर दास जी ने अपने 'साहित्यालोचन' में पंडित केशवप्रसाद मिश्र की वैचारिकता के आधार पर साधारणीकरण क्रिया को 'योग की मधुमति भूमिका' से संबंधित माना है। उनके अनुसार 'मधुमति भूमिका में जिस प्रकार साधक का चित्त पूर्णतया एकाग्र हो जाता है और वह ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ लौकिक ज्ञान नष्ट होकर केवल आनन्द की अनुभूति ही शेष रह जाती है उसी प्रकार रसानुभूति की स्थिति में प्रमाता की चित्तवृत्तियां समंजित होकर केवल एक उद्दिष्ट भाव को अनुभूति में लीन हो जाती हैं'। श्यामसुंदर दास जी ने 'मधुमति भूमिका' शब्द भले ही पंडित केशव मिश्र जी के विचारों से लिया पर उनके इस वैचारिक चिन्तन पर आचार्य अभिनवगुप्त की वैचारिकता का प्रभाव अधिक झलकता है।

बाबू गुलाबराय ने अपनी कृक्ति 'Problems और अध्ययन' में काव्यशास्त्रीय चिन्तन के इस पक्ष पर विचार करते हुए कहा है 'साधारणीकरण व्यक्ति का नहीं (क्योंकि उसको मुख्य विशेषताओं की सम्पन्नता अक्षुण्ण रहती है) वरन् उसके सम्बन्धों का होता है। कवि भी अपने निजी व्यक्तित्व से ऊंचा उठकर साधारणीकृत हो जाता है। वह लोक का प्रतिनिधि होकर भावाभिव्यक्ति करता है। पाठक का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि वह अपने व्यक्तित्व के क्षुद्र बन्धनों को तोड़कर लोक सामान्य को भावभूमि में आ जाता है'।

पंडित रामदहिन मिश्रा जी ने साधारणीकरण में चित्त की एकरूपता की अवस्था पर बल दिया है। अपनी रचना 'काव्य दर्पण' में उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'व्यक्तिगत साहित्य सर्वगत (Universal) साहित्य तभी हो सकता है जबकि साहित्यिक अपने को जानता है। जिस साहित्यिक की अनुभूति में आंतरिकता रहती है, जो अपने को पहचानता है वही सार्वजनीन साहित्य की सृष्टि कर सकता है'। आगे अपने कथन का खुलासा करते हुए आपने लिखा 'साधारणीकरण का सारतत्व यह है कि कवि अपनी सामग्री से जो भाव उपस्थित करता है उसका अनुभव निरवच्छिन्न रूप से सामाजिक को होना। रसिकों को जो काव्यानंद प्राप्त होता है वह आस्वादन रूप होता है, इन्द्रिय तृप्ति कारक नहीं। सार्वजनिक होता है वैयक्तिक नहीं। स्वानुभवजन्य होता है, भ्रम्यजन्य नहीं'। इस संबंध में भाषा को 'भावमय व रागमय' होना आपने आवश्यक माना है। मिश्र जी मानते हैं कि 'कवि को सहृदय का समानधर्मा होना चाहिए। तभी वह साधारणीकरण में समर्थ हो सकता है'।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी ने साधारणीकरण को रचयिता और उपभोक्ता अर्थात् रचनाकार लेखक / कवि और दर्शक पाठक के मध्य भावना का तादात्म्य माना है।

बीसवीं सदी में भारतीय काव्यशास्त्र की चिन्तन परंपरा में प्रोफेसर नगेन्द्र नगाइच की गणना प्रथम पंक्ति के विशिष्ट चिन्तकों के रूप में होती है। आपने 'रस सिद्धांत' के परिप्रेक्ष्य में साधारणीकरण प्रक्रिया पर भी विचार किया है। इस संदर्भ में आपने कवि की अनुभूति का समाज से साधारणीकरण मानते हुए स्पष्ट किया है कि 'साधारणीकरण कवि को अपनी अनुभूति का होता है, अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है'।

नगेन्द्र जी के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में साधारणीकरण पर विचार विमर्श की एक श्रृंखला सी दिखाई देती है। इस लड़ी में एक नया दृष्टिकोण प्रोफेसर तारकनाथ बाली जी का मिलता है। उन्होंने 'व्यक्ति विशेष के भाव या अनुभव को साधारण या सार्वभौम' कर देने की प्रक्रिया को साधारणीकरण माना है।

आपकी मान्यता है कि 'साधारणीकरण का अर्थ हुआ विभावादि के वैशिष्ट्य का आरोप और उसका साधन है काव्यभाषा का वैशिष्ट्य'। प्रोफेसर बाली ने कवि की अनुभूति के साधारणीकरण को पाश्चात्य काव्यशास्त्र में रिचर्ड महोदय द्वारा प्रतिपादित 'सम्प्रेषण सिद्धांत' के साथ जोड़ कर प्रस्तुत किया है। सम्प्रेषण को एक व्यावहारिक सत्य मानते हुए उनका कहना है कि 'सामाजिक तथा कवि की अनुभूति का कविता के माध्यम से सम्प्रेषण होता है और इस सम्प्रेषण के लिए कवि भाषा का विशेष प्रयोग महत्व रखता है'। इसके लिए उन्होंने माना कि कवि की अनुभूति का सम्प्रेषण तभी संभव होता है जब विभावादि (काव्य सामग्री) साधारणीकरण के प्रभाव से वैशिष्ट्य से मुक्त होकर साधारण प्रतीत होते हैं तथा इसी व्यापार के प्रभाव से सहृदय भी मोह-स्वार्थ भावना से मुक्त होकर एक सार्वभौम संवेदना में तल्लीन हो जाता है। आपने स्पष्ट किया कि 'कवि की अनुभूति का साधारणीकरण नहीं होता बल्कि साधारणीकरण

व्यापार के द्वारा विभावादि का साधारणीकरण होता है जिसके कारण कवि या पात्र की अनुभूति पाठक तक पहुँचने में समर्थ हो जाती है। काव्यानुभव में सम्प्रेषणीयता की क्षमता आ जाती है।'

साधारणीकरण सिद्धांत काव्य की एक बुनियादी समस्या के समाधान का एक शाश्वत गम्भीर प्रयास है। समस्या यह है कि काव्य / साहित्य में वैयक्तिक अनुभव की अभिव्यक्ति होती है परन्तु वह देश-काल की सीमाओं को लांघते हुए दूर-दूर तक अपनी प्रभाव पताका फहराने में समर्थ हो जाता है। अब प्रश्न यह उपस्थित हो जाता है कि काव्यानुभव में वैयक्तिकता या वैशिष्ट्य का अतिक्रमण करने की यह क्षमता कैसे और कहाँ से आ जाती है? भारतीय मनीषियों ने तो नौवीं दसवीं सदी से ही इस पक्ष की गंभीरता को भांप कर इस पर वैचारिक मंथन कर जो शास्त्रीय नवनीत प्राप्त किए उन्हीं में एक पुष्ट रूप साधारणीकरण के रूप में भावक समाज को दिया।

आज जब चिन्तन क्षेत्र में साहित्य अध्ययन के लिए अन्त: ज्ञानानुशासनीय गवाक्ष मनीषी वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत है तो इस चिन्तन धारा का महत्व और भी अधिक वांछनीय है। आज साहित्यिक शोध क्षेत्र में भी मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय आदि आधारों पर भी इसी बात के समाधान के प्रयास हो रहें हैं।

भारतीय ही नहीं अपितु पाश्चात्य मनीषी भी यह तो स्वीकार करते हैं कि काव्य, कवि-व्यक्ति के शक्तिशाली मनोवेगों की सहज अभिव्यक्ति है जो रचना कविता के रूप में अभिव्यक्ति पाता है, पर इसकी गुणवत्ता की परख इसके वैयक्तिक भाव को समष्टि प्रभाव में आने पर ही महत्ता मिलती है। एतदर्थ कवि भाव का भावकसमाज तक सम्प्रेषण अनिवार्य है जिससे व्यष्टि का मनोवेग समष्टि का बन सके। यह सम्प्रेषण भावानुकूल सहज भाषा से ही सम्भव है। परिणामत: कवि की अनुभूति सर्वसाधारण के साथ जुड़कर सामाजिक भावना का रूप धारण कर लेती है। इसी से कविता साहित्य देश-काल की सीमाओं से मुक्त हो जाता है। यह मुक्ति साधारणीकरण से ही मिलती है।

अत: कह सकते हैं कि 'कवि रचनाकार की अनुभूति का यह साधारणीकरण एक ऐसी मिश्रित मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अनुभूति की गहराई, कल्पना की वास्तविकता, अभिव्यक्ति की निपुणता तथा लोककल्याण की कामना निहित होती है।' इसी कारण किसी भी रचनाकार का कृक्तित्व 'जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि' के रूप में अपनी पहचान बनाने में सिद्ध हुआ है।

उपजीव्य ग्रन्थ :

1. बाबू गुलाब राय: सिद्धांत और अध्ययन
2. तारकनाथ बाली भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत
3. नगेन्द्र: रस सिद्धांत
4. निर्मला जैन रस सिद्धांत और सौन्दर्य शास्त्र
5. भगवान् दास: रस का तात्विक विवेचन
6. रामचंद्र शुक्ल चिन्तामणि (भाग एक)
7. रामदहिन मिश्र काव्य दर्पण
8. राममूर्ति त्रिपाठी सहृदय और साधारणीकरण
9. शिवदत्त शर्मा रस निष्पत्ति में साधारणीकरण की भूमिका
10. श्याम सुंदर दास साहित्यालोचन

कोश:

1. साहित्य शास्त्र कोश राजवंश सहाय होरा
2. हिन्दी साहित्य कोश भाग-एक धीरेन्द्र वर्मा

कृतकार्य आचार्य

हिन्दी विभाग,

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर-143005

साहित्य-समालोचना का क्षेत्र और रिच्ड्र्स का मूल्य सिद्धांत

-डॉ. हरीश कुमार सेठी

साहित्य और समालोचना एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं, दोनों में नाभि-नाल संबंध है। साहित्य, आलोचना का विषय है। समालोचना द्वारा ही साहित्य के सौंदर्य को परखा जाता है। रचना का प्रत्येक दृष्टि से मूल्यांकन और पाठक के रुचि परिष्कार के कारण आलोचक साहित्यकार, पाठक और समाज के बीच की कड़ी है। सृजन कर्म की परिणति 'कृक्ति' की भाँति, आलोचना भी मनुष्य की एक बुनियादी प्रवृत्ति है। साहित्य के संदर्भ में यह कहा जाता है कि 'जीवन साहित्य की आधारभूमि है', 'साहित्य जीवन की व्याख्या है।' अगर साहित्य जीवन की व्याख्या है तो समालोचना 'व्याख्या की व्याख्या' है। साहित्य जहाँ अपनी आंतरिक क्षमता पर निर्भर करता है, वहीं वह रचनात्मक समालोचना की रचनाशीलता पर भी निर्भर करता है। 'सार्थक आलोचना रचना को नया जीवन देती है, उसकी सार्थकता की तलाश करती हुई वह रचना को बार-बार जीवित करती है। एक जानी-पहचानी बात है कि आचार्य शुक्ल ने 'पदमावत' को नया जीवन दिया। आलोचना रचना की पहचान बताती है, उसकी पहचान विकसित करती है।'।

जीवन-मूल्यों के माध्यम से साहित्य को सही अर्थों में साहित्यिक वैभव प्राप्त होता है। इस दृष्टि से जीवन-मूल्य, साहित्यिक वैभव के आधारभूत तत्व हैं। परिवर्तन सृष्टि का नियम है, यह जीवन-स्थितियों और संदर्भों में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के साथ लोक-रुचि में भी बदलाव आता है, जिसका प्रतिफलन साहित्य में भी होता ही है। परिणामतः साहित्य में परिवर्तन के मोड़ आते रहते हैं। आलोचना इन परिवर्तनों को प्रकाश में लाती है क्योंकि आलोचना हर समय के रचना-कर्म का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में उसकी उपयोगिता-प्रासंगिकता पर ध्यान रखती है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ रचना एवं रचना की आलोचना की प्रासंगिकता में भी बदलाव आ जाता है।' आलोचना के मूल्य सामान्यतः काव्यगत मूल्यों के अनुवर्ती होते हैं। जिस प्रकार साहित्यकार पात्रों की सृष्टि करते समय एक ही जाति के अनेक पात्रों की अलग-अलग विशेषताओं को समन्वित करके प्रतिनिधि पात्र या 'टाइप' की रचना करता है उसी प्रकार आलोचक आलोचना के प्रतिमानों का निर्धारण करते समय अनेक काव्य-कृतियों की मूलभूत विशेषताओं का संचयन करके आदर्श प्रतिमान की सृष्टि करता है।'

साहित्य के समान, समालोचना के विवेचन में जीवन मूल्यों की अक्सर अलग से चर्चा नहीं की जाती, किंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि साहित्य अथवा समालोचना के क्षेत्र में जीवन मूल्यों का कोई स्थान नहीं है। हालाँकि 'कला कला के लिए' दृष्टि के आधार पर रचना की महत्ता एवं प्रतिष्ठा का विवेचन-विश्लेषण करने वाले विशुद्ध कलावादी साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में 'मूल्य' शब्द के प्रयोग को उचित नहीं मानते किंतु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि 'समालोचना को कहीं-न-कहीं मूल्यों का विचार भी करना ही पड़ता है।' ऐसे में जीवन-मूल्यों के साथ समालोचना के संबंध पर विचार करना भी अपेक्षित होता है। किंतु इससे पूर्व, समालोचना के अर्थ और स्वरूप पर प्रकाश डालना उपयुक्त रहेगा।

समालोचनाः अर्थ, परिभाषा और साहित्य से संबद्धता

'समालोचना' शब्द को 'आलोचना', 'समीक्षा' आदि के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। 'समालोचना' शब्द, 'आलोचना' शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगने से बना है। ' आलोचना' शब्द की व्युत्पत्ति आङ्+लोच् (लोचृ)+ल्यु-टाप् से हुई है। 'लुच' धातु का अर्थ है-'देखना'। इस प्रकार, किसी वस्तु को मर्यादित दृष्टि से देखना आलोचना है। 'आलोचना' शब्द में 'सम्' उपसर्ग जोड़कर बने शब्द 'समालोचना' का अर्थ है किसी वस्तु को संतुलित दृष्टि से देखना-परखना। 'समीक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति 'ईक्ष' धातु में 'सम्' उपसर्ग और 'अ' तथा 'टाप्' प्रत्यय लगकर हुई है सम्+ईक्ष+अङ्+टाप्ऽ 'ईक्ष' धातु का अर्थ भी 'देखना' होता है तथा समीक्षा का अर्थ 'सम्यक् रूप से देखना' है। इस तरह कहा जा सकता है कि 'समालोचना' अथवा 'आलोचना' अथवा 'समीक्षा' शब्द का अभिप्राय है देखना, समग्र रूप से परखना।

हिंदी भाषा और साहित्य के संसार में 'समालोचना' (आलोचना) शब्द, अंग्रेजी के 'criticism' शब्द के समतुल्य प्रयुक्त होता है। 'क्रिटिसिज्म' शब्द 'क्रिटिक' (critique) से बना है, जिसका अर्थ है 'अलग करना' अर्थात् 'तुलना और निर्णय करना'। कोशगत अर्थ के अनुसार, आलोचना विश्लेषण के आधार पर निर्णय करने की प्रक्रिया है। यह निर्णय किसी साहित्यिक अथवा कलात्मक काव्य के

संबंध में किसी विश्लेषण का परिणाम होता है। कभी-कभी यह साहित्यिक कृक्तियों के वैज्ञानिक अन्वेषण से भी संबद्ध होता है। 'हिंदी साहित्य कोश' में आलोचना का अर्थ इस प्रकार दिया हुआ है 'किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या अथवा उसका मूल्यांकन करना है।'

पाश्चात्य विद्वान मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार आलोचना संसार में जो भी उत्तम ज्ञान तथा चिंतन है, उसके अधिगम एवं प्रचार का और इस प्रकार ताजे और सच्चे विचारों के प्रभाव के संस्थापन का निस्संग प्रयास है। 'A disinterested endeavour to learn and propagate the best that is known and thought in the world and thus to establish a current of fresh and true ideas.' डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार आलोचना 'रचनाओं को समझने, उनकी व्याख्या करने और बेहतर रचनाओं के निर्माण के लिए उचित वातावरण निर्मित करने का काम करती है।' डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार 'आलोचना वह साहित्यिक प्रक्रिया है जो काव्यगत सौंदर्य का उद्घाटन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करती है।' स्पष्ट है कि विभिन्न विद्वानों ने आलोचना को अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित और व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। इस प्रकार, साहित्य के परिप्रेक्ष्य में समालोचना (आलोचना) शब्द का अर्थ है - किसी कृति की सम्यक् व्याख्या करना, उसका मूल्यांकन करना, उसके सौंदर्य को परखना या निर्णय करना।

आलोचना कई प्रकार की होती है क्योंकि वह कई उद्देश्यों से की जा सकती है। सब आलोचना मूल्यांकन नहीं होती; उसका उद्देश्य प्रभाव उत्पन्न करना या व्याख्या करना भी हो सकता है। 11 किंतु यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि किसी कृति को अच्छा अथवा बुरा सिद्ध करना मात्र ही आलोचना नहीं है। आलोचना के अंतर्गत रचना-कर्म का प्रत्येक कोण से, प्रत्येक दृष्टि से मूल्यांकन-सम्यक् व्याख्या को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का उद्देश्य निहित है। अन्य शब्दों में, रचना के मूल भाव को समझना, शब्द-शक्ति, अलंकार आदि की कसौटी से अर्थ-भंगिमाओं और अन्य परिवेशों का परीक्षण, भाषा-शैली की कलात्मकता का उद्घाटन और सौंदर्यशास्त्र-मूल्य-नैतिकता-रस आदि के आधार पर रचना का मूल्यांकन आलोचना की परिधि में समाहित रहता है। 'और मूल्यांकन प्रत्यक्ष या परोक्ष बिना मूल्यों या प्रतिमानों के नहीं हो सकता मानदंड के बिना माप कैसे हो सकती है?'12

आलोचित कृति की आलोचना के द्वारा पाठक की रुचि का परिष्कार होता है और उसको साहित्यिक गतिविधि को 'समझ' निर्धारित होती है, विकसित होती है। कृक्ति को समग्र रूप में परखने वाले को समालोचक (आलोचक) कहते हैं। समालोचक, साहित्यिक रचना (अथवा रचनाकार) और पाठक के बीच की कड़ी है। वह दोनों के बीच मध्यस्थता का काम करता है। समालोचक, रचनाकार के साहित्यिक कृत्य को परखने का और उसे प्रकाश में लाने का महत्ती कार्य करता है। 'सार्थक आलोचना रचना को नया जीवन देती है, उसकी सार्थकता की तलाश करती हुई वह रचना को बार-बार जीवित करती है।' 13 रसास्वादन की प्रक्रिया में तो इसका महत्व है ही। यही कारण है कि अज्ञेय ने लिखा है कि 'समालोचना को कहीं-न-कहीं मूल्यों का विचार भी करना ही पड़ता है कृति का मूल्यांकन वह न भी करे तो भी स्वयं उसके रसास्वादन की प्रक्रिया में उसके मूल्यों या स्वीकृत प्रतिमानों का महत्व होता है।'14

समालोचक, रचना में साहित्यिकता की खोज करते हुए पाठक एवं रचना के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। किंतु समालोचना के अंतर्गत रचना को समाज से भी जोड़ने का प्रयास किया जाना अपेक्षित होता है क्योंकि समाज ही रचना के अस्तित्व एवं अस्मिता का विधायक होता है। केवल तभी समालोचना, सही अर्थों में 'समालोचना' है। डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार, 'आलोचना रचना और पाठक के बीच ही मध्यस्थता नहीं करती, वह रचना, पाठक और समाज के बीच भी मध्यस्थता का काम करती है। आलोचना का संबंध रचना और समाज दोनों से होता है। अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सजग आलोचक एक समाजचेता संवेदनशील कलाकार के सामाजिक मानवीय व्यवहार के पल के रूप में रचना की आलोचना करता है और आलोचना के दौरान रचना और समाज के संबंध को स्पष्ट करता चलता है।'15 यही कारण है कि रचनाकार की भाँति, समालोचक का भी समाज के साथ गहरा एवं अटूट संबंध है।

साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में 'मूल्य' शब्दः रिचर्ड्स द्वारा प्रणयन

ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले इस 'मूल्य' शब्द का साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में प्रयोग अपेक्षाकृत नया है। इस क्षेत्र में 'मूल्य' शब्द का पर्दापण पश्चिम के आलोचनाशास्त्र में हुआ। हालाँकि भारतीय समीक्षाशास्त्र में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग देखने को नहीं मिलता, किंतु इसके स्थान पर 'प्रयोजन' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। 'प्रयोजन' शब्द पर्याप्त रूप से विस्तृत है। यह आर्थिक व्यंजनार्थ से भी मुक्त है, किंतु यह भी वास्तविकता है कि वह मूल्य का ही आंतरिक रूप है। मूल्य वस्तु के निर्माण के पश्चात् मिलता है और निर्माण से पूर्व वही लक्ष्य रूप से 'प्रयोजन' कहलाता है। कलावादी तो मूल्य और प्रयोग दोनों के विरोधी हैं।16

पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में ब्रैडले के 'कला कला के लिए' विचार के विरोध में सर्वप्रथम आई.ए. रिचडर्स (1893-1979) ने 'कविता में मूल्यों' का समर्थन किया। वैसे रिचडर्स से पूर्व, मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य की उपयोगिता को मूल्यों से संबद्ध करके सिद्ध किया

था। मैथ्यू आर्नल्ड की दृष्टि में कविता का कार्य नैतिक-सांस्कृतिक संवेदना का प्रसार और परिष्कार करना है। 'पाश्चात्य समीक्षा के इतिहास में कला को समाज के साथ जोड़कर देखने की शुरुआत मैथ्यू आर्नल्ड ने की; इस प्रकार कला की समीक्षा में मूल्य संबंधी बुनियादी सवाल उठाने का श्रेय मैथ्यू आर्नल्ड को ही है। आर्नल्ड कवि था, कवि होने के बाद भी उसने कविता की समाज-संबद्धता को जरूरी मानकर उसे कुछ नैतिक मूल्यों से जोड़ा और उसकी उपयोगिता पर बहस की। मैथ्यू आर्नल्ड ने एक तरह से आत्मतत्ववादी रचना-दृष्टि का समर्थन करते हुए कविता को सर्वोत्तम विचारों से जोड़ने की शर्त का आख्यान किया।'17

हालाँकि मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य के मूल्यों का गुणानुवाद ही किया, किंतु उनमें कविता की प्रवृत्ति और मूल्यों की वैज्ञानिक व्याख्या का अभाव है। आर्नल्ड के 'कविता जीवन की आलोचना है18 के विचार को रिचर्ड्स ने अपने ढंग से आगे बढ़ाया और रचना की सार्थकता के लिए उसकी 'उपयोगिता' पर बात की। 'रिचर्ड्स ने कविता की व्याख्या वैज्ञानिक भूमिका पर की।'19 वैज्ञानिक तत्वों को साथ लेकर चले रिचर्ड्स ने अपने साहित्यिक चिंतन को नवीन आधार प्रदान करते हुए आलोचना के क्षेत्र में 'मूल्य' शब्द को प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार, आलोचना के परिप्रेक्ष्य में 'मूल्य' शब्द को पहली बार प्रयुक्त करने का श्रेय रिचर्ड्स को है।

रिचर्ड्स का मूल्य सिद्धांत

रिचर्ड्स के समय में विज्ञान के बढ़ते हुए महत्व की वजह से मानव-सभ्यता में कविता के स्थान पर प्रश्न-चिह्न लगाया जाने लगा। वैज्ञानिक प्रगति और भौतिकवादी दर्शन के कारण कविता की उपयोगिता-सार्थकता को लेकर बढ़ते संशय के विरोध में शेली, मैथ्यू आर्नल्ड और आई.ए. रिचर्ड्स ने आवाज उठाई। रिचर्ड्स ने विज्ञान और मनोविज्ञान की सहायता से कविता की महत्ता एवं सार्थकता की प्राण-प्रतिष्ठा की। रिचर्ड्स का मूल्य-सिद्धांत मुख्यतः इन्हीं दोनों पर आधारित है। 'रिचर्ड्स के लिए मनोविज्ञान ही विज्ञान है क्योंकि दूसरा कोई विज्ञान साहित्यालोचन में उपयोगी नहीं हो सकता।'20

रिचर्ड्स ने कविता की महत्व-प्रतिष्ठा करते हुए व्यक्ति, समाज और जाति में मानसिक संतुलन की बात की। भौतिकवादी दर्शन और विज्ञान की चुनौती के कारण आधुनिक युग में परंपराएँ, आस्थाएँ-विश्वास, मूल्य-व्यवस्थाएँ नष्ट हो रही हैं और सभी मूल्य विघटित हो रहे हैं। तब सभ्य-समाज कविता का आश्रय लेकर ही मानसिक संतुलन को बनाए रख सकता है। उन्होंने मनोविज्ञान का आश्रय लेकर पूर्व-प्रचलित मतों-विश्वासों-मान्यताओं को तर्कपूर्ण ढंग से खंडित किया कि सौंदर्य से मानव की विशिष्ट भावना परितुष्ट होती है, आनंद की अनुभूति होती है। रिचर्ड्स ने सभी आनंदमूलक भावनाओं का सौंदर्य से संबंध को स्वीकार नहीं किया। उनका तर्क था कि सौंदर्यानुभूति का संबंध उन्हीं भावनाओं से है जिनका प्रकाशन और कार्य, जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखाई देता है। इस तरह उन्होंने काव्यानुभूति (सौंदर्यानुभूति) और जीवनानुभूति में भेद नहीं माना, उन्हें तत्वतः एक ही माना।

रिचर्ड्स आलोचना के क्षेत्र में मूल्य को अत्यधिक महत्व देते हैं। रिचर्ड्स का कहना है कि 'मेरे विचार में आलोचना अनुभूतियों के पृथक्करण तथा मूल्यांकन का प्रयास है। यह हम तब तक नहीं कर सकते जब तक अनुभूतियों के स्वरूप का कुछ ज्ञान न हो अथवा मूल्यांकन एवं संप्रेषण के सिद्धांत न हों।'21 रिचर्ड्स के इस विचार से स्पष्ट होता है कि वे आलोचना को अनुभूतियों का पृथक्करण और उनका मूल्यांकन मानते हैं। आलोचना के इन उद्देश्यों को अनुभूतियों के स्वरूप के ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है। यह ज्ञान मूल्यांकन के सिद्धांत के ज्ञान एवं संप्रेषण के सिद्धांत के ज्ञान पर टिका है। इसलिए रिचर्ड्स का कहना है कि 'वे दो स्तंभ, जिन पर आलोचना टिकी रहनी चाहिए मूल्य और संप्रेषण व्यापार हैं।'22

रिचर्ड्स अपने मूल्य-सिद्धांत की समस्त परिकल्पना को मनोविज्ञान पर आधारित करके चलते हैं। रिचर्ड्स ने अपने विचारों को दोहराते हुए मूल्य की तीन परिभाषाएं दी हैं – (1) 'कोई भी वस्तु, जो इच्छा को संतुष्ट करती है, मूल्यवान है।'23 (2) दूसरी परिभाषा है – 'विभिन्न जटिल रूपों में भावना और इच्छा की संतुष्टि की क्षमता मूल्य है।'24 (3) तीसरी और अंतिम परिभाषा है – 'ऐसी कोई भी वस्तु मूल्यवान है जो समान या अधिक महत्वपूर्ण इच्छा को बिना कुंठित किए किसी इच्छा को संतुष्ट करती है।'25

रिचर्ड्स द्वारा दी गई उक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि किसी इच्छा की संतुष्टि और जिस इच्छा की संतुष्टि हो रही है उसके समान या उससे अधिक महत्वपूर्ण कोई इच्छा कुंठित न हो (अर्थात दब न जाए)। चूँकि समस्त मानव-जीवन इच्छाओं की संतुष्टि का ही प्रयास होता है, इसलिए सबसे मूल्यवान वस्तु वह है जो अधिकतम इच्छाओं की अधिकतम संतुष्टि करे।

मूल्य के संदर्भ में इच्छा की संतुष्टि संबंधी विचारों के मूल में जो 'इच्छा' का आधार है, वह रिचर्ड्स को मनोदशा-विश्लेषण से मिली हुई चीज है। रिचर्ड्स इस तथ्य से भली-भांति अवगत थे कि मनोवैज्ञानिक आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानव-मन में निरंतर आवेग उत्पन्न होते रहते हैं। इनमें से कुछ परस्पर संबद्ध एवं अनुकूल होते हैं और कुछ प्रतिकूल एवं विरोधी कोटि के। रिचर्ड्स

ने आवेगों को दो वर्गों में विभाजित करके वृत्तियों को समझने-समझाने का यत्न किया है। ये हैं - (1) अनुकूल एषणा अर्थात् इच्छा (Appetency); और (2) प्रतिकूल एषणा अर्थात् द्वेष (Aversion)।

चूँकि मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति है कि वह इच्छा की संतुष्टि के लिए प्रयत्नशील रहता है और साथ ही द्वेष की निवृति के लिए भी प्रयत्नशील रहता है इसलिए अनुकूल एषणा प्रवृत्तिमूलक आवेग है और द्वेष निवृत्तिमूलक। किंतु मानव जीवन में व्यवस्था, इन दोनों प्रकार की परस्पर विरोधी एषणाओं के पारस्परिक सामंजस्य के कारण आती है। रिचदुर्म मनोवेगों की इस संतुलित और व्यवस्थित अवस्था को 'साइनेस्थेसिस' (synaesthesis) की संज्ञा प्रदान करते हैं। इस प्रकार, रिचर्ड्स ने मनोवेगों के सामंजस्य और ममन्वय पर आधारित मनोव्यवस्था का पक्ष लिया। इस 'साइनेस्थेसिस' को हिंदी में 'सह-संवेदनवाद' कहा जा सकता है। सह-संवेदनवाद ऐमौ संघटना का नाम है, जिसमें मानवीय संभावनाओं की कम से कम क्षति होती है 127 इस सामंजस्य के मूल में ही रिचर्ड्स के अनुसार 'मूल्य' का आशय निहित है और इस साइनेस्थेसिस में रिचडर्स मानव जीवन के अधिक से अधिक मूल्यों की स्थिति की सार्थक मानते हैं। रिचर्ड्स का यह मानना है कि मूल्य को तत्वदर्शन से न जोड़ने वाले लोगों के लिए मूल्य को एक ऐसी क्षमता के रूप में परिभाषित करना स्वाभाविक ही है, जो विभिन्न जटिल रूपों में भावना और आकांक्षा की सृष्टि करे। कोई भी ऐसी चीज मूल्यवान है, जो समान या ज्यादा महत्वपूर्ण एषणा को कुंठित किए बगैर किसी एषणा की सृष्टि करे 128 इन दोनों के परस्पर संतुलन सामंजस्य से ही मानव-जीवन व्यवस्थित एवं सुचारु हो पाता है। यह संतुलन अनुकूल एवं प्रतिकूल एषणा की परस्परता में एक-दूसरे को क्षरित न करने की स्थिति से ही बनता है।

मनोव्यवस्था संबंधी इन मनोवैज्ञानिक तर्कों के आधार पर पूरी छानबीन करने के पश्चात् रिचर्ड्स को यह प्रतीत होता है कि जीवन के समान कविता (कला) की सार्थकता भी अंतर्वृत्तियों के संतुलन सामंजस्य में है। अधिक से अधिक लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति और कम से कम एषणाओं (आकांक्षाओं) के क्षरण का आधार वस्तुत: कला का मूल्यवत्ता संबंधी आग्रह है। काव्यानुभूति और जीवनानुभूति को तात्विक रूप से एक मानते हुए रिचर्ड्स ने जीवन और कलाओं को अंकित मूल्य-विचारों का सुरक्षित भंडार कहा 129 मूल्यवत्ता के प्रति आग्रह के कारण अनेकानेक मस्तिष्कों द्वारा अपनी पूरी अर्थवत्ता में स्वीकृत होकर कला 'संप्रेषणीय' होती है। 'संप्रेषणीयता' के उद्देश्य से चली रचना में ही परस्पर विरोधी अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रवृत्तियों का संतुलन सामंजस्य हो पाता है। रिचर्ड्स के अनुसार, 'All that occurs is that under certain conditions separate minds have closely similar e&perience'30

रिचर्ड्स काव्यानुभूति की व्याख्या के अनुक्रम में प्रथमत: मानव-मन की क्रिया (Action) एवं प्रक्रिया (process) को व्याख्या करते हैं। रिचर्ड्स का कहना है कि 'मन आवेगों (impulses) का तंत्र है।'31 और आवेग को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'हमने आवेग उस प्रक्रिया को कहा है जिसमें कोई मानसिक घटना घटित होती है; उस प्रक्रिया का आरंभ होता है किसी उद्दीपन से और अवसान होता है किसी कार्य में। 32 इस प्रकार, सर्वप्रथम उद्दीपन आवश्यक है क्योंकि उद्दीपन से ही मानसिक प्रतिक्रिया होती है और वह मानसिक प्रतिक्रिया कार्य-रूप में परिणत होकर आवेग की उत्पत्ति करती है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, रिचर्ड्स ने आवेगों को दो वर्गों (1) अनुकूल एषणा अर्थात् इच्छा (Appentency); और (2) प्रतिकूल एषणा अर्थात् द्वेष (Aversion) 33 - में विभाजित करके वृत्तियों को समझने-समझाने का यत्न किया है। चूंकि इच्छाओं की संतुष्टि एवं द्वेष की निवृत्ति के लिए प्रयत्नशील रहने की मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति के कारण 'अनुकूल एषणा' प्रवृत्तिमूलक आवेग है और 'द्वेष एषणा' निवृत्तिमूलक। रिचर्ड्स का मूल्य-विषयक विचार इच्छाओं की संतुष्टि से ही है। इस प्रकार, वृत्ति को परितोष या संतोष प्रदान करने वाली वस्तु अथवा कार्य-व्यापार, मूल्यवान होता है। मूल्यवान वह है जिससे इच्छाओं की संतुष्टि हो, अधिक से अधिक आवेगों का उपशमन हो। अधिक से अधिक आवेगों के उपशमन से व्यक्ति में संघटन (organisation) या व्यवस्थापन (systematisation) आता है क्योंकि मानसिकता अराजकता की स्थिति में महत्वपूर्ण तथा महत्वहीन आवेग समान रूप से कुंठित होते हैं। फलत: संघटन बाधित होता है और संघटन के अभाव में मूल्य का लोप हो जाता है।34 किसी भी वस्तु अथवा कार्य-व्यापार की मूल्यवत्ता के मूल्यांकन का आधार यह है कि वह अपने समान अथवा अपने से अधिक महत्वपूर्ण किसी भी वृत्ति में विक्षोभ पैदा न करे। चूँकि वृत्तियों की परितोष प्रक्रिया में कुछ को तोष और कुछ में क्षोभ उत्पन्न होता ही है इसलिए उत्तमोत्तम संतुलन वही है जो मानवीय संभावनाओं की कम से कम क्षति करे 135 रिचर्ड्स के अनुसार 'सर्वाधिक मूल्यवान मन:स्थितियाँ वे हैं जो मानव-व्यापारों में अधिकतम तथा व्यापकतम समन्वय स्थापित करने में समर्थ हैं और जिनमें न्यूनतम प्रतिरोध, संघर्ष, अतृप्ति और नियंत्रण पाए जाते हैं। सामान्यत: मन:स्थितियाँ उसी मात्रा में मूल्यवान होती हैं जिस मात्रा में वे निरर्थक (waste) और कुंठा (frustration) को कम करती है।'36 यही 'सह-संवेदनवाद' या 'साइनेस्थेसिस' है।

वैसे रिचर्ड्स के मूल्य-संबंधी विचारों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि व्यक्तियों की संतुष्टि में ही मूल्य की स्थिति है और अंतर्वृत्तियों के संतुलन सामंजस्य की प्रक्रिया से कविता की मूल्यवत्ता निर्धारित होती है। कविता की इसी मूल्यवत्ता में कविता की सार्थकता है। इस मूल्य-दृष्टि के आधार पर कविता को सार्वभौम स्वीकृति प्राप्त होती है। किंतु प्रश्न यह उभरता है कि कौन-सी एषणा अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि कोई वैयक्तिक एषणा समाज-विरोधी है तो स्वाभाविक है कि उसे महत्वपूर्ण नहीं समझा जाएगा, वह महत्त्वहीन ही समझी जाएगी। किंतु रिचर्ड्स ने इसका कोई विशेष स्पष्टीकरण नहीं किया। वैसे प्रकारांतर में वे इसे तब स्वीकार अवश्य करते हैं जब वे अपराधियों की इसलिए निंदा करते हैं क्योंकि वे महान मानवीय मूल्यों से वंचित रह जाते हैं। विचारणीय यह है कि समाज के सभी व्यक्तियों द्वारा अपनी-अपनी इच्छाओं की संतुष्टि पर ही स्वयं को केंद्रित करने और उसमें रत रहने की स्थिति में समाज का क्या होगा ? उदाहरण के तौर पर, अपराध-भावना वैयक्तिक एषणा के रूप में भले महत्वपूर्ण हो, परंतु यह समाज और समाज के अन्य व्यक्तियों के लिए घातक है। इस आधार पर वह महत्वहीन है। ऐसी महत्वहीन एषणाओं को दबाने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए अन्यथा समाज में उच्छृंखलता और अराजकता-अंधकार फैलेगा जिसकी कल्पना भी कठिन है। उच्छृंखलता-अराजकता से उत्पन्न एषणाओं का संघर्ष सभी कलाकारों (साहित्यकारों) के सम्मिलित प्रयास से भी शांत नहीं होगा।

रिचर्ड्स मूल्य और नैतिकता में कोई भेद स्वीकार नहीं करते। रिचर्ड्स का मत है कि नैतिकता की समस्या, मूल्य की समस्या से भिन्न नहीं है 'नैतिकता की समस्या अर्थात् जीवन से हम अधिकतम मूल्य कैसे प्राप्त करें यह समस्या वस्तुत: संघटन की समस्या बन खड़ी होती है। संघटन की यह समस्या व्यक्ति-विशेष के जीवन से ही संबद्ध नहीं है बल्कि व्यक्तियों के जीवन के पारस्परिक समंजन से भी संबद्ध है।'37 इस प्रकार, स्पष्ट है कि रिचर्ड्स के अनुसार नैतिकता और मूल्य में कोई भेद नहीं। इच्छाओं की संतुष्टि में मूल्यवत्ता का भाव निहित होने के कारण नैतिकता भी इच्छाओं की संतुष्टि में ही है। 'रिचडर्स की यह स्व-कल्पित नैतिकता, नैतिकता की स्वीकृत धारणा से पूर्णत: भिन्न है। इच्छाओं की संतुष्टि को नैतिकता का आधार मान लेने पर अनैतिक नाम की कोई वस्तु रह ही नहीं जाती क्योंकि मनुष्य जो भी कर्म-अकर्म करता है, वह अपनी इच्छाओं की संतुष्टि के लिए हो।'38 इस प्रकार, इच्छाओं की संतुष्टि से संबंधित होने के कारण मूल्य और नैतिकता, दोनों में भले ही कोई भेद न हो किंतु इसका यह अभिप्राय भी नहीं कि सामाजिक नैतिकता सदैव उचित ही होती है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि सामाजिक चिंतन, अंधविश्वासी अज्ञानी हो जाए और वह वैयक्तिक नैतिकता का विरोधी हो जाए। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ईसा मसीह और सुकरात जैसे चिंतक विचारक और गैलीलियो जैसे वैज्ञानिक, जो अंधविश्वासी सामाजिक चिंतन के कारण समाज की क्रूरता के शिकार हुए। इसलिए 'इच्छाओं की संतुष्टि' को मूल्य का सर्वोच्च नियामक मानना उचित नहीं है न ही व्यक्ति के लिए और न ही समाज के लिए। डॉ. बच्चन सिंह39 ने रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत का विवेचन करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं-

1. काव्य की सार्थकता उसके मूल्य-बोध में है।
2. इस मूल्य में ही उच्चतर नैतिकता समाहित है।
3. उसका मूल्य-बोध सुखवाद (हिडोनिज्म) से भिन्न है।

वस्तुत: रिचर्ड्स के मूल्य-संबंधी दृष्टिकोण को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि मानव-क्रियाओं में सर्वाधिक मूल्यवान क्रिया कला (तथा कलानुभूति) मानव व्यापारों से पृथक या भिन्न न होकर उससे संबद्ध है, जीवनानुभूति का पर्याय है। किसी भी मानव-क्रिया का मूल्य इससे निर्धारित होता है कि उसमें मनोवेगों में संतुलन और व्यवस्था उत्पन्न करने का सामर्थ्य कहाँ तक है। और, काव्य की मूल्यवत्ता मनोवेगों की विश्रांति में है। मूल्य-व्यवस्था एवं संप्रेषण, आलोचना के दो आधार हैं। रिचर्ड्स काव्य-संप्रेषण से उत्पत्र काव्य-प्रभाव और उसके आधार पर मूल्य निर्धारण से स्वयं को अधिक संबंधित रखते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अपने चिंतन-प्रकरण में रिचर्ड्स कलाओं को संप्रेषण क्रिया का सर्वोत्तम माध्यम मानते हैं। पाठक के मन में निष्पन्न वृत्तियों का संतुलन और सामंजस्य की स्थापना इस संप्रेषण क्रिया का मूल्य है। यही सामंजस्य (सामरस्य) एवं संतुलन ही मूल्य है। मनोवेगों की यह संतुलित एवं व्यवस्थित अवस्था, साइनेस्थेसिस है। रिचर्ड्स ने इस मूल्य को सदैव आनंद और उपदेश के मूल्यों से ऊपर रखा है। रिचर्ड्स के विचारों से ज्ञात होता है कि कलानुभूति अपने में मूल्यवान है और लौकिक अनुभव से अपनी प्रकृति में भिन्न नहीं है। आलोचक इसी कलानुभूति का विवेचन-विश्लेषण करता है। इसलिए रिचर्ड्स, आलोचक को 'मूल्यों के न्यायाधीश '40 का दर्जा देते हैं।

रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत की आलोचना और उसका प्रदेव

परवर्ती आलोचकों ने रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत की आलोचना की। रिचर्ड्स के समकालीन कवि-आलोचक टी. एस. एलियट ने अपनी रचनाओं ('दि यूज ऑफ पोएट्री एंड दि यूज़ ऑफ क्रिटिसिज्म' और 'मॉडर्न माइंड') में रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत का विरोध

किया और कहा कि वे इस प्रकार के किसी सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकते जो विशुद्ध रूप से वैयक्तिक मनोविज्ञान की नींव पर टिका हो। एलियट के विचार के अनुसार, रिचर्ड्स के काव्यानुभव का मनोविज्ञान खुद उन्हीं के काव्यानुभव पर आधारित है, उसी तरह से उनका मूल्य-सिद्धांत भी उनके अपने (वैयक्तिक) मनोविज्ञान पर ही केंद्रित है। इसके विरोध में एलियट ने 'Theory of Depersonalisation' (निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत) प्रतिपादित किया। एलियट ने यह दावा किया कि वैयक्तिक मनोविज्ञान के सहारे साहित्य की सार्वभौमिकता और वस्तुनिष्ठता को नहीं समझा जा सकता। वाटसन ने रिचर्ड्स के सिद्धांतों को भयंकर रूप से दोषपूर्ण मानते हुए कहा है कि 'Richards theories are appallingly vulnerable.' वहीं पाश्चात्य विद्वान डेविड डेचेज का मानना है कि अधिकांश मनोवैज्ञानिक धारणाओं पर आधारित काव्य-मूल्य के संबंध में रिचर्ड्स की सामान्योक्तियों को कोई भी महत्वपूर्ण समसामयिक मनोवैज्ञानिक स्वीकार नहीं करता है। उनका यह भी विचार है कि रिचर्ड्स के सिद्धांत के संबंध में विवाद का केंद्र-बिंदु यह रहा है कि कवि द्वारा अधिगमित तथा योग्य पाठक में संप्रेषित जिस सामाजिक शांति का वे वर्णन करते हैं, वह सच है या मनगढ़ंत; उनके द्वारा कल्पित मूल्य-सिद्धांत काव्यालोचकों के लिए तो अमान्य है ही, मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी समर्थित नहीं है। डेचेज के ये विचार रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत की उपादेयता और प्रासंगिकता को निरर्थक सिद्ध करने वाले हैं। रिचर्ड्स का मनोविज्ञान 'सूडो मनोविज्ञान' है। अत: उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। वाटसन जैसे विद्वानों ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'इस ग्रंथ (प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म) के साथ रिचर्ड्स के अधिकांश प्रभाव की अवधि समाप्त हो जाती है।'

यह ठीक है कि रिचर्ड्स के समकालीन और परवर्ती विचारकों ने उनके 'मूल्य सिद्धांत' का विरोध किया, किंतु उन्होंने विज्ञान के युग में विज्ञान के आतंक से मुक्त होकर आलोचना को वैज्ञानिक शुद्धता एवं वस्तुनिष्ठता (scientific accuracy and objectivity) प्रदान करने की दिशा में सार्थक कदम उठाया और काव्यानुभव को जीवनानुभव की ठोस जमीन पर स्थापित किया। रिचर्ड्स की धारणा है कि आज के वैज्ञानिक युग में वही आलोचना मान्यता प्राप्त कर सकती है जो वैज्ञानिक हो अर्थात् वैज्ञानिक उपादानों से निर्मित हो। इसके लिए उन्होंने मनोविज्ञान को अपनी आलोचना-पद्धति का आधार बनाया है, साथ ही मानव-विज्ञान, अर्थविज्ञान जैसे नव-विकसित अनुशासनों का भी उपयोग किया। कोई भी इस सत्य को नकार नहीं सकता कि कलाशास्त्र और मनोविज्ञान के गहन चिंतन पर केंद्रित रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत में आलोचना के क्षेत्र में 'मूल्य' शब्द को व्यवस्थित रूप से प्रयुक्त करने और एक सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित करने का आधार उपलब्ध कराया है, जिसका श्रेय निश्चित तौर पर रिचर्ड्स को जाता है।

संदर्भ :

1. शब्द और कर्म, प्रो. मैनेजर पांडेय, पृ. 67
2. आलोचक का दायित्व, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 19
3. आलोचना (समालोचना और नैतिक मान - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय), वर्ष 3 अंक 1 पूर्णांक 9 अक्टूबर 1953, पृ. 129
4. संस्कृत-हिंदी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 161
5. संस्कृत-हिंदी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 1079
6. Criticism - act of making judgements... Analysis...the critical consdieration or judegment of artistic world... a comment, review, article...the art of a critic...scientific investigation–Websters - New World Dictionary, p, 336
7. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पृ. 120
8. Selected EssaysÑ The Study of Poetry, Mathew Arnold, p. 33
9. शब्द और कर्म, डॉ. मैनेजर पांडेय, पृ. 67
10. आलोचक का दायित्व, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 9
11. सच्चिदानंद (समालोचना और नैतिक मान-सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय), आलोचना वर्ष 3 अंक 1 पूर्णांक 9, अक्तूबर 1953, पृ. 129
12. सच्चिदानंद (समालोचना और नैतिक मान-सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय), आलोचना वर्ष 3 अंक 1 पूर्णांक 9, अक्तूबर 1953, पृ. 129
13. शब्द और कर्म, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, पृ. 67
14. आलोचना (समालोचना और नैतिक मान सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय), आलोचना वर्ष 3 अंक 1 पूर्णांक 9, अक्तूबर 1953, पृ.129
15. शब्द और कर्म, प्रो. मैनेजर पांडेय, पू. 68
16. कुछ उथले कुछ गहरे, बाबू गुलाबराय, पू. 155
17. रस और रस-परंपरा, डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, पृ. 149
18. Selected Essays, The Study of Poetry, Mathew Arnold, p.y|
19. आलोचक और आलोचना, डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 34
20. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा, पू. 221
21. Criticism, as I understand it, is the endeavour to discriminate between experiences and to evalute them. We cannot do this without some understanding of the nature of experience or without theories of valuation and communication. Principles of Literary Criticism, I.A. Richards. p.2

22. The two pillars upon which a theory of criticism must rest are on account of value and an account of communication. Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.25
23. Anything is valuable which satisfies an appetency. - Principles of Literary Criticism, 1.A. Richards, p.47
24. Value as capacity for satisfying feeling and desire in various intricate ways. - Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.47
25. Anything is valuable which will satisfy an appetency without involving the frustration of some equal or more important appetency Principles of Literary Criticism. L.A. Richards, p.48
26. Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.47
27. आलोचक और आलोचना, डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 35
28. Principles of Litrary Criticism, L.A. Richards, p.2
29. Principles of Litrary Criticism, L.A. Richards, p.32
30. Principles of Literary Criticism, I.A. Richards, p.175
31. The mind is a system of impulses. Principles of Literary Criticism, I.A. Richards, p.23
32. The process in the course of which a mental event may occur, a process apparently beginning in a stimuls and ending in an act, is what we have called an impulse. Principles of Literary Criticism, I.A. Richards, p.86
33. Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.47
34. Without system, needless to say, value vanishes, since in a state of chaos important and trivial impulses alike are frustrated. Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.2
35. That organisation which is least wasteful of human possibilities is, in short, the best. Principles of Literary Criticism, IA Richards. p.52
36. The most valueable states of mind then are those which involve the widest and most comprehensive coordination of activities and the least curtailment, conflict, starvation and restriction. States of mind in general are valuable in the degree in which they tend to reduce waste and frustration. Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.59
37. The problem of morality then, the problem of how we are to obtain the greatest possible value from life, becomes a problems of organisation, both in the individual life and in the adjustment of individual lives to one another.. - Principles of Literary Criticism, I.A. Richards, p.38
38. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा, पृ. 236-237
39. आलोचक और आलोचना, ़डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 35
40. To set up as a critic is to set up as a judge of values. Principles of Literary Criticism, L.A. Richards, p.61
41. The Literary Critics, G. Watson, p.196
42. His generalization about the value of poetry, which are in large measure based on psychological notions which no important contemporary psychologist accepts. Critical Approaches to Literature, David Daiches, p.141
43. आलोचक और आलोचना, डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 37
44. With this book.... Richard's period of major influence ends. – The Literary Critics, G. Watson, p. 197
45. पाश्चात्यद्व काव्यश्शास्त्र, डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा, पृ. 263

निदेशक
अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
ब्लॉक 15-सी, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068

रामकथा की उपादयेता

-डॉ. महेश 'दिवाकर'

भारतीय जनजीवन में रामकथा की व्यापकता और गहराई का अनुमान लगाना अत्यंत कठिन कार्य है। भारतवर्ष में एक सीमित समय के लिए भी निवास करने वाला कोई भी व्यक्ति हो अथवा परिवार रामकथा की महत्ता से अपरिचित नहीं रह सकता। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'राम' नाम और रामकथा का प्रभाव इस देश के वायुमण्डल का प्राणभूत तत्व बन गया है। भारतीय ग्रामीण और शहरी जीवन पर प्रमुखतया महाकवि तुलसीदास रचित 'श्रीरामचरितमानस' और पं. राधेश्याम 'कथा-वाचक' द्वारा रचित 'श्री राधेश्याम रामायण' का प्रभाव व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'मानस' की प्रस्तावना में यह बात बहुत स्पष्ट रूप से स्वीकार की है कि उनके 'मानस' का मूलाधार 'श्री वाल्मीकि रामायण' ही है। इसी प्रकार पं. राधेश्याम 'कथावाचक' ने अपनी रामायण पर 'श्री वाल्मीकि रामायण' और 'श्रीरामचरितमानस' के प्रभाव को स्वीकार किया है। 'श्रीरामचरितमानस' और 'श्री राधेश्याम रामायण' को पढ़ने के उपरान्त यह कहना भी संगत होगा कि तीनों ग्रंथों की कथाएं समान होते हुए भी पूरी तरह से समान नहीं हैं। लेकिन तीनों ही ग्रंथों में अभिव्यक्त 'श्रीराम कथा का महत्व' निर्विवाद है।

वस्तुतः श्रीराम भारतीय चेतना के प्राण हैं। श्रीराम के बिना भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन और साहित्य निष्प्राण हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के इतिहास में श्रीराम कथा, उससे सम्बन्धित वाङ्मय, उसके माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली जीवन चेतना और उस पर आधारित विविधकालीन एवं विविध रूपी कला-सृजन का अप्रतिम महत्व है। श्री राम की कथा में मानवीय आचरण के जिन उदात्त आदर्शों और मूल्यों की प्रतिष्ठा हमें आज तक देखने मिलती है, उनकी उपयोगिता और महत्व किसी एक देश अथवा काल के संदर्भों तक ही सीमित नहीं है। बिना किसी संकोच के उन्हें सार्वदेशिक और सार्वकालिक मानवीय मूल्यों के रूप में मान्यता प्रदान की जा सकती है। श्रीराम के द्वारा स्थापित भाव-जीवन और कर्मजीवन की मर्यादाएं चिरकाल से मानवीय श्रेष्ठता का मानदण्ड रही हैं तथा आज भी केवल भारतीय लोकमानस ही नहीं अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण विश्व की प्रज्ञा उनसे श्रेष्ठजीवन की दिशा और प्रेरणा प्राप्त कर रही है और निश्चय ही आगे भी प्राप्त करती रहेगी। उल्लेखनीय है आज भारत के अतिरिक्त अमेरिका, चीन, रूस, यू.के., फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्विट्जरलैंड, नार्वे, स्वीडन, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, आस्ट्रिया, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, वियतनाम, श्रीलंका, सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, वैस्टइण्डीज, फिजी, जापान आदि-आदि यूरोपीय और पाश्चात्य देशों में श्रीराम कथा और उसके व्यापक प्रभाव को देखा जा सकता है। श्रीराम और उनके आदर्श मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा उन देशों को जीवन्त चेतना प्रदान कर रही है। महाकवि तुलसीदास ने स्वयं श्रीराम के महत्व को आद्योपान्त प्रतिपादित किया है। यथा -

'सियराममय सब जगजानी। करहुँ प्रनामु जोरि जुग पानी।।'

श्रेष्ठ साहित्य जीवन को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है और इसी कारण श्रेष्ठ साहित्यकार सभी देशों और कालों में व्यापक सम्मान के अधिकारी माने जाते हैं। मानव-जीवन की श्रेष्ठता का मानदण्ड स्थापित करने और उसे व्यावहारिक जीवन के विविध आयामों में ढालने का जैसा प्रेरक, प्रभावशाली और अग्रणी प्रयास महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' महाकाव्य की रचना करके किया, उसके समकक्ष किसी दूसरे सांस्कृतिक अथवा साहित्यिक प्रयास का उदाहरण हम खोजकर भी नहीं पा सकते। वस्तुतः महर्षि वाल्मीकि निश्चय ही अपने काव्य के नायक श्री राम के समकालीन थे। उन्होंने श्री राम को अपने सुदीर्घ चिन्तन-मनन और व्यावहारिक अनुभव के आधार पर निर्धारित उत्कृष्ट मानवीय मर्यादाओं का पालन करने वाला पाकर ही उनकी जीवन कथा पर आधारित महाकाव्य की रचना की। वे श्रीराम के आश्रित कवि नहीं थे और न ही उन्होंने किसी निजी भौतिक लाभ को उद्देश्य बनाकर काव्य ग्रंथ 'रामायण' का प्रणयन किया था। वास्तव में महर्षि वाल्मीकि मानवीय विकास की उस कक्षा में पहुँचे हुए महान संत थे, जिसमें पहुँचकर मनुष्य 'सर्वभूत हितरत' हो जाता है। ऐसे संतों का 'आत्महित', 'सर्वहित' के साथ एकाकार हो जाता है।

सर्वहित की शुद्ध चेतना और गहन भावना से प्रेरित कवि कर्म से ही उन उदात्त आयामों का स्पर्श कर सकता है जिनकी प्रभावशाली झलक हमें 'वाल्मीकि' प्रणीत रामायण में देखने को मिलती है और उसी से प्रेरित काव्य वैसी व्यापक सफलता और शाश्वत लोक-स्वीकृति प्राप्त कर सकता है, जैसी श्री वाल्मीकि रामायाण ने प्राप्त की है। एक आश्रमवासी तपस्वी की रचना होते हुए भी लोक जीवन

से 'रामायण' महाकाव्य का गहरा सम्बन्ध और जुड़ाव देखकर हम केवल विस्मय ही कर सकते हैं। निस्सन्देह, 'रामायण' एक दिन अपने अकेले कवि सृजक की कृति मात्र रही होगी, किन्तु आज वह कोटि-कोटि नर-नारियों के घर-घर की वस्तु विशेष बन गयी है। 'रामायण' निस्सन्देह एक महान कृति है क्योंकि इसमें वर्णित श्रीराम सारे ज्ञानों, विज्ञानों और कलाओं की आत्मा राम ही हैं।

श्री वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' में एक ओर तो अपने महान निर्माता की अनुपम पाण्डित्य प्रतिभा का समावेश है, और दूसरी ओर जिस देश एवं जिस धरती में उसका सृजन हुआ, वहाँ के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आदर्शमय जीवन की समग्रताओं का एक साथ समावेश है। रामायण अपने मूल रूप में संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य और कतिपय परवर्ती महाकाव्यों, काव्यों का प्रेरणा स्रोत ही नहीं, वरन् वह भारतीय परिवारों की धर्मकृति आचार-विचार, संस्कार-सम्बन्धों का आदर्श ग्रंथ और भारत की चिरन्तन भक्ति भावना, ज्ञान भावना तथा मैत्रीभावना का प्रतिनिधि महाग्रंथ भी है।

विश्यकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'रामायण' की इस सर्वांगीणता को लक्ष्य करके लिखा है - 'रामायण का प्रधान वैशिष्ट्य यही है कि उसमें घर की ही बातें विस्तृत रूप से वर्णित हुई हैं। पिता-पुत्र में, भाई भाई में, स्वामी-स्त्री में जो धर्म बंधन है, जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है, उसको 'रामायण' ने इतना महान बना दिया है कि वह सहज ही महाकाव्य के उपयुक्त हो गया है। हिमालय जितने ऊँचे एवं व्यापक आदर्शों और सागर जैसे गम्भीर विषयों-विचारों का एक साथ किसी एक ग्रंथ में समावेश हो पाया है, तो वह 'रामायण' ही है, अपनी इन्हीं मौलिक विशेषताओं के कारण देशकाल की सीमाओं को तोड़कर 'रामायण' आज विश्व साहित्य की महान कृति और महामुनि वाल्मीकि विश्वकवि के रूप में पूजित हो रहे हैं।'

इसी संदर्भ में डॉ. वाचस्पति गैरोला ने पुनः लिखा है - 'महामुनि के जीवन का एक मात्र उद्देश्य ज्ञानार्जन करना था। जन-कलरव से दूर एकान्त अरण्यों में जीवन-यापन करने पर भी पारिवारिक आचार-व्यवहारों एवं सामाजिक क्रिया-कलापों के प्रति भी उनका ज्ञान अपरिमित था। उन्होंने पारिवारिक सम्बन्धों का और सामाजिक जीवन, क्रिया कलापों का इतनी बारीकी से विश्लेषण किया है कि वैसा कदाचित ही किसी दूसरे ग्रंथ ने किया हो। वे आदिकवि, महाकवि, धर्माचार्य और सामाजिक-जीवन की बारीकियों के ज्ञाता, सभी कुछ एक साथ थे। वे गम्भीर अन्तश्चेत्ता भी थे। इसीलिए महाकवि कालिदास और प्रतिभावान काव्यशास्त्री आनंदवर्द्धन ने वाल्मीकि को न केवल आदिकवि कहा है, अपितु एक महान कवि होने के साथ-साथ उन्हें साधारण क्रौंच-शोक को श्लोकमयी वाणी में अवतरित करने वाला आदिकवि भी कहा है। आदिकवि के इस असामान्य व्यक्तित्व का परिचय 'रामायण' एक ऐसी कृति है, जिसकी प्रत्येक बात अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है। उसकी सर्वांगीण भावना का परिचय उसके कलेवर में ही परोक्ष रूप से मिलता है। उसकी इसी सर्वांगीण भावना को लक्ष्य करते हुए स्थान-स्थान पर कभी उसे काव्य, कभी गीता और कभी संहिता कहकर स्मरण किया गया है।' वाल्मीकि रामायण के वर्तमान रूप में प्राप्त निम्नलिखित श्लोक उसके स्थाई महत्व और व्यापक लोकप्रियता के सम्बन्ध में ब्रह्माजी की चरितार्थ भविष्यवाणी है -

'यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले! तावत् रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।'

हाकवि वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य की केवल रचना ही नहीं की, अपितु उसकी लोकोपकारी विशेषता को जानते हुए उन्होंने उस काव्य के प्रचार की भी व्यवस्था की। अपने आश्रम में उत्पन्न श्रीराम के पुत्रों-कुश और लव को उन्होंने अपने काव्य की स्वरबद्ध गायन की शिक्षा दी और जहाँ विशिष्ट जन समुदाय एकत्र हुआ हो, वहाँ-वहाँ जाकर रामायण गान करने की उन्हें प्रेरणा भी दी। इसका परिणाम यह हुआ कि स्थान-स्थान पर श्री रामायण के गान की परम्परा चल पड़ी।

डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है - 'रामायण' का समाज में बहुत प्रचार था। लव और कुश उसका गान करके और उसके अभिनेता का अभिनय दिखाकर अपनी जीविका कमाते थे। काव्योपजीवी कुशीलव अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर रामायण के लोकप्रिय अंश को बढ़ाते थे। इस प्रकार आदि रामायण का कलेवर बढ़ने लगा!.......इस समय तक रामायण नर-काव्य ही था और राम आदर्श क्षत्रिय के रूप में ही भारतीय जनता के सामने प्रस्तुत किए गये थे, ज्यों-ज्यों रामचरित लोकप्रिय होता गया, त्यों-त्यों उसमें अलौकिकता भी आती गयी। बाद के साहित्य में तो राम की महिमा अत्यन्त मुखर हो उठी तथा पूरे भारतवर्ष की संस्कृति दिनों-दिन राममयी होती चली गयी। भारत में संस्कृतियों का जो विराट् समन्वय हुआ है, राम कथा उसका अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीक है। सबसे पहले तो यह बात है कि इस कथा से भारत की भौगोलिक एकता ध्वनित होती है। एक ही कथा सूत्र में अयोध्या, किष्किन्धा और लंका - तीनों के बंध जाने के कारण सारा देश एक दिखता है। दूसरे, इस कथा पर भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में रामायणों की रचना हुई हैं जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय रही है तथा जिनके प्रचार के कारण भारतीय संस्कृति की एकरूपता में वृद्धि हुई है। निस्सन्देह श्रीराम, श्रीरामकथा, वाल्मीकि और 'रामायण' नामतः एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक सांस्कृतिक अभियान के

रूप में परस्पर अभिन्न हैं। इनमें से किसी एक के महत्व का वर्णन शेष सभी के महत्व का वर्णन बन जाता है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि रामकथा वास्तविक रूप से सुदूर अतीत में घटित न हुई होती तो रामायण-महाकाव्य अस्तित्व में नहीं आया होता, यदि रामायण महाकाव्य अस्तित्व में नहीं आया होता तो आदिकवि और संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में महर्षि वाल्मीकि की प्रतिष्ठा नहीं हुई होती। यह कहना भी समीचीन होगा कि यदि घटना रूप में राम कथा और राम पर आधारित काव्य के रूप में 'रामायण' अस्तित्व में न आये होते, तो भारतवर्ष की उदात्त सांस्कृतिक-परम्परा को यह रूप प्राप्त नहीं हुआ होता, जो प्राचीन काल में ही उसे प्राप्त हो गया था और जिसके प्रभाव तथा प्रेरणा से भारतीय संस्कृति आज भी अनेक रूपों में अनुप्राणित है।

श्रीरामकथा और 'रामायण' ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक जीवन और उसके इतिहास को कितना प्रभावित किया है, इसके निरूपण में देशी विदेशी विद्वानों और विवेचकों द्वारा जितना कुछ कहा जा चुका है, उसे एकत्र संकलित करने से एक विशाल ग्रंथ ही नहीं, एक विशाल ग्रंथालय बन जायेगा। श्रीराम रामकथा और 'रामायण' की महिमा से हमारे देश का शिक्षित समुदाय ही नहीं, अशिक्षित समुदाय भी गहराई के साथ परिचित है और जुड़ा है। उस परिचय की मात्रा में अन्तर हो सकता है, किंतु उससे सम्बन्धित निष्ठा लगभग सर्वव्यापक है। उस निष्ठा के आधार पर भारतवर्ष की प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भाषाओं में जितना प्रचुर और सम्मान्य साहित्य रचा गया है, उसका अति संक्षिप्त विवरण देना भी प्रस्तुत प्रसंग में नहीं संभव है और न आवश्यक।

'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रंथ में डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'रामायण' पर आधारित रचनाओं की एक छोटी-सी तालिका दी है जिसमें उन्होंने मात्र संस्कृत ग्रंथों के ही नाम दिए हैं, जिसके बारे में वे लिखते हैं - 'यह तालिका अगणित राम काव्यों को छोड़कर बनायी गयी है, किंतु फिर भी इससे यह बात सरलता से सिद्ध हो जाती है कि राम कथा ने इस देश की संस्कृति की कितनी गंभीर सेवा की है और कैसे इस कथा को लेकर सारा देश, लगभग एक आदर्श की ओर उन्मुख रहा है। इसके साथ अगर तिब्बत, सिंहल, खेतान, हिन्दचीन, श्याम, ब्रह्मदेश, कश्मीर और हिन्देशिया में प्रचलित रामकाव्यों की सारिणी मिला दें तो सचमुच ही यह मानना पड़ेगा कि रामकथा न केवल भारतीय वरन् एशियाई संस्कृति का भी महत्वपूर्ण तत्व बन गयी थी।'

वस्तुत: जीवन का कोई आयाम ऐसा नहीं है जिसका चित्र 'रामायण' में नहीं है। 'रामायण' द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत जैसे किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रंथ नहीं है, वह तो भारतीय संस्कृति का निर्मल दर्पण है, इसीलिए, रामायण ने जन-जन में अपना स्थान बना लिया है। 'रामायण' हमारी संस्कृति का महान् ग्रंथ है। 'श्रीराम' और 'रामायण' अपने विविध रूपों में सम्पूर्ण विश्व की आदर्श जीवन-चेतना को प्रभावित कर रहे हैं। वर्तमान विज्ञान के युग में 'श्रीराम' और 'रामायण' उनमें निहित जीवन-बोध अब पूरी मानव चेतना की नहीं तो प्रबुद्ध मानव चेतना की सम्पत्ति बन चुके हैं।

ध्यातव्य है आज समग्र विश्व के चिन्तन और आचरण का परम्परागत घनिष्ठ सम्बन्ध खण्डित हो चुका है। मनुष्य की कथनी और करनी अब एक दूसरे से बहुत दूर और भिन्न हो गयी है। इस रूप में संसार के अधिकांश मनुष्यों के व्यक्तित्व विभाजित-व्यक्तित्व बन गये हैं। आध्यात्मिक और भौतिक अभ्युदय परस्पर समन्वित होकर ही मानवीय उत्कर्ष और मानव-कल्याण का मार्ग निर्मित करते हैं। आध्यात्मिकता और भौतिकता का एक-दूसरे से कट जाना आज के विश्व की एक बहुत बड़ी त्रासदी है। निश्चित ही, ऐसे संक्रमणकाल में 'श्रीराम' और 'श्रीराम कथा' के तात्विक स्वरूप का परिज्ञान उजागर और प्रचलित होकर मानव के उन खण्डित आयामों में जीवन्त और कल्याणकारी समन्वय स्थापित कर सकता है, ऐसी अनेकानेक भारतीय और अन्यदेशीय मनीषियों की अवधारणा है। मैं स्वयं इस तथ्य से पूर्ण तथा सहमत हूँ। 'राम कथा' निश्चय ही पूरी सत्ता की अखण्ड एकात्मकता की प्रेरक चेतना जगाकर हर स्तर की ओर हर प्रकार के विघातक प्रयासों और संघर्षों की वर्तमान तथा भावी संभावनाओं के निराकरण में अद्भुत योगदान कर सकती है। वेदों और पुराणों में भी 'राम' का महत्व प्रतिपादन हुआ है-

'राम नाम प्रभावेण स्वयंभूः सृजते जगत! विभर्ति सकलं विष्णुं शिवः संहरते पुनः।'

अर्थात् 'राम-नाम' के ही प्रभाव से ब्रह्मा संसार के कर्ता हैं, विष्णु पालनकर्ता हैं और शंकर भगवान ही संहर्ता बने हैं। वस्तुतः 'श्रीराम' और 'श्रीरामायण' की उपादेयता असंदिग्ध है। यह सकल विश्व का कल्याणकारक चरित काव्य है।

संदर्भ :

1. डॉ. अंजुरानी, संस्कृत महाकाव्यों में रामकथा का स्वरूप, पृ. 2
2. डॉ. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 168
3. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्राचीन साहित्य-अनुवादक पं. रामदहिन मिश्र, पृ. 1
4. डॉ. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 170
5. वाल्मीकि रामायण- बालकाण्ड सर्ग-2, श्लोक-36-37

सरस्वती भवन,

12-मिलन विहार,

दिल्ली रोड, मुरादाबाद-244001

किन्नर-विमर्श और हिन्दी साहित्य

-डॉ. सपना शर्मा

किन्नर या 'अन्य' समाज की संरचना का अभिन्न अंग हैं। इनकी ताली की थाप अंगुलियों का कड़कना, इनका पैर उठाकर जमीन पर पटखना, गाली देने का विशेष अन्दाज तथा इनके नृत्य शैली के रूप में रूढ़ हो गए हैं। शादी ब्याह हो या सन्तान उत्पत्ति का अवसर यह किन्नर बधाई लेना नहीं भूलते है। क्योंकि ऐसा करना इनकी परम्परागत जीवन शैली का हिस्सा हैं। बधाई लेने के रूप में जो भी शगुन इन्हें प्राप्त होता है उसी से अपना पेट भरते है तथा अपना गुजारा करते हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण से आजकल अनेक विमर्शों की चर्चा की जा रही है और समाज के अनके उपेक्षित लोगों पर साहित्य में चिन्तन हो रहा है किन्तु लिंग निरपेक्ष समाज बहिष्कृत किन्नर समुदाय के विषय में कोई बड़ी चर्चा नहीं की जा रही है। साहित्य के अतीत पर नज़र दौड़ाएँ तो पाते हैं कि पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की कुछ कहानियों में जिन लौंडेबाजों का जिक्र आता है वे यही किन्नर हैं। इसके बाद लम्बे समय तक साहित्य क्षेत्रों में किनरों की दशा के बारे में चुप्पी छायी रहती है। जिसे 1999 में नीरजा माधव अपने उपन्यास 'यमदीप' में तोड़ती है। तत्पश्चात् सन् 2011 में प्रदीप सौरभ अपने उपन्यास 'तीसरी ताली' की कथा दिल्ली के सिद्धार्थ हाउसिंग इन्क्लेव सोसाइटी से कर इसकी परिणति किन्नरों के तीर्थ स्थल कूवगम में करते हैं और इस बहाने वह तथा कथित सभ्य समाज के साथ इसकी चर्चा करते हैं। एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यास महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा' सन् 2014 में प्रकाशित उपन्यास है जिसमें लेखक ने एक राजवंश में पैदा हुई किन्नर लड़की सोना के संघर्ष का वर्णन किया है। किन्नर 'लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की अंग्रेजी में लिखित आत्मकथा 'मी हिज़डा मी लक्ष्मी' शीर्षक से आई है। इसका हिन्दी अनुवाद 'मैं हिजडा मैं लक्ष्मी' नाम से प्रकाशित हुआ है। किन्नर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी के संघर्ष के परिणामस्वरूप ही अप्रैल 2015 में उच्चतम न्यायालय ने किन्नरों को तीसरे लिंग की मान्यता प्रदान की है।

वर्तमान समय में लोगों की दृष्टि हाशियाकृत समुदायों पर पड़ी है। स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, वृद्ध, कृषक के साथ-साथ आज किन्नर-विमर्श भी ध्यान केन्द्रित कर रहा है। कभी-कभी पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त किसी को अन्य का दर्जा दिया जाता है। यह अन्य का दर्जा किसे और क्यूं किया जाता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर कई चौराहों दोराहों से गुजरते हुए अपनी पहचान किन्नर के रूप में दर्ज करवाते लोग ध्यान आकर्षित करते हैं। किन्नर का यदि शाब्दिक अर्थ देखें तो गाने बजाने का पेशा करने वाली जाति।

एक अन्य धारणा कि ये किन्नर या 'अन्य' समाज की संरचना का अभिन्न अंग हैं। इनकी ताली की थाप अंगुलियों का कड़कना, इनका पैर उठाकर जमीन पर पटखना, गाली देने का विशेष अन्दाज तथा इनके नृत्य शैली के रूप में रूढ़ हो गए हैं। शादी ब्याह हो या सन्तान उत्पत्ति का अवसर यह किन्नर बधाई लेना नहीं भूलते है। क्योंकि ऐसा करना इनकी परम्परागत जीवन शैली का हिस्सा हैं। बधाई लेने के रूप में जो भी शगुन इन्हें प्राप्त होता है उसी से अपना पेट भरते है तथा अपना गुजारा करते हैं।

किन्नर या हिजड़ों से अभिप्राय उन लोगों से है जिनके जननांग पूरी तरह से विकसित न हो पाए या कहे तो पुरुष होकर भी स्त्रियों-सा स्वभाव स्त्रैण स्वभाव के लोग। एक दिव्यांग बच्चा जो देख, सुन या बोल नहीं सकता उसे घर में तो स्थान मिलता है परन्तु एक किन्नर जो जैनेटिक दोष से ग्रस्त होता है उसे तो घर भी नसीब नहीं होता है। माता-पिता का प्रेम-संरक्षण, पारिवारिक सुख, जो उसका अधिकार है वो भी उससे छीन लिया जाता है।

जब कभी किसी परिवार में कोई खुशी का अवसर आता है तो लैंगिक दृष्टि से विवादित समाज के ये लोग जो हिजड़े या वर्तमान में किन्नर नाम से जाने जाते है गाने बजाने नृत्य करने और बधाई लेने उस परिवार में पहुँच जाते है। इस अवसर पर बधाइयाँ गाकर आशीर्वाद देकर कुछ रुपये लेकर विदा हो जाते है। इसके बाद कोई नहीं सोचता कि ये किन्नर कौन हैं? कहाँ से आए थे और कहाँ चले गए ? इनकी समस्याएँ क्या है? क्या कारण है कि ये भिक्षावृत्ति को अपनाकर अपना जीवनयापन कर रहे हैं।

किन्नरों को अग्रलिखित कोटियों में विभक्त कर देखा जा सकता है बुचरा बुचरा वास्तविक हिजड़े होते हैं क्योंकि ये जन्मजात न पुरुष होते हैं और न स्त्री।

नीलिमा : इस कोटि के हिजड़े किसी-न-किसी कारण से स्वयं ही हिजड़ा बन जाते हैं।

मनसा : मनसा हिजड़े मानसिक रूप में अपने आपको हिजड़ों के निकट महसूस करते हैं। पर इनकी मनोवैज्ञानिक काउंसलिंग कर इन्हें इनके लिंग में भेजा जा सकता है।

हंसा : ये यौन अक्षमता के कारण स्वयं को हिजड़ों के साथ जोड़ लेते हैं इनका उपचार करके इनमें से अधिकांश को पुरुष या स्त्री बनाया जा सकता है।

अबुला : इनके अतिरिक्त नकली हिजड़े भी होते हैं उन्हें अबुला कहा जाता है। ये वास्तव में पुरुष होते हैं पर धन अर्जन के लोभ में हिजड़ा होने का स्वांग करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये स्त्रियों का वेश धारण कर किन्नर बनने का नाटक करते हैं और हिजड़ों के अधिकारों पर कुठाराघात करते हैं। असली और नकली किन्नर में यह अंतर है कि असली किन्नर स्वभाव से स्त्री होते हैं।

कई बार पारिवारिक रंजिश के कारण भी कुछ लोग शत्रु के परिवार के लड़के लड़कियों को उठाकर ले जाते हैं और उन्हें किन्नर बना देते हैं। पीड़ित बच्चों को आजीवन इस यंत्रणा से गुजरना पड़ता है।

किन्नरों के उद्भव और अतीत के सम्बन्ध में अनेक अन्तरकथाएँ भी प्रचलित हैं। इनमें सबसे अधिक प्रचलित भगवान राम के वनगमन से सम्बन्धित कथा है। जब पिता की आज्ञा पालन करते हुए राम सीता और लक्ष्मण चित्रकूट आ गए तो उन्हें मनाकर वापिस अयोध्या लाने के लिए भरत अयोध्यावासियों के साथ चित्रकूट आए थे। लेकिन प्रभुराम ने भरत तथा अयोध्यावासियों की विनय स्वीकार करते हुए सभी नर नारियों को वापिस जाने के लिए कहा था। परन्तु उन्होंने किन्नरों के लिए कुछ भी नहीं कहा जबकि वह भी उन्हें मनाने के लिए वहाँ उपस्थित हुए थे। कहा जाता है कि उनके लिए प्रभु राम का कोई स्पष्ट आदेश न पाकर उन्होंने चौदह वर्ष तक वहीं रुककर प्रभुराम के वापिस आने की प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया। जब वनवास पूर्ण कर प्रभुराम वापिस अयोध्या जा रहे थे तो उन्होंने इन हिजड़ों को मार्ग में चित्रकूट में अपनी प्रतीक्षा करते हुए पाया। भगवान राम द्वारा उनके वहाँ रुकने का कारण पूछने पर इन निर्मल हृदय किन्नरों ने कहा कि जब हम भरत के साथ चित्रकूट में आपको मनाने के लिए आए थे तो आपने कहा था :

'जथा जोगु करि विनय प्रनामा,
विदा किए सब सानुज रामा।
नारि पुरुष लघु मध्य वडेरे,
सब सनमानी कृपा निधि फेरे। '

प्रभुराम हिजड़ों की इस निश्छल और निस्वार्थ भावना से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया कि कलयुग में तुम राज करोगे और उन्हें यह भी वरदान दिया कि जिसे अपना आशीर्वाद दोगे उसका कभी भी अनिष्ट नहीं होगा। इसीलिए शुभ अवसरों पर लोग इनका स्वागत करते हैं और इन्हें मुँह माँगी धन राशि देकर विदा करते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनसे प्राचीनकाल में किन्नरों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। महाभारत में शिखण्डी का उल्लेख आता है। अर्जुन ने भी एक हिजड़े का वेश धरकर विराटनगर में अज्ञातवास का अंतिम वर्ष पूर्ण किया था। गुजरात के किन्नर अर्जुन के उस रूप की उपासना करते हैं और इस स्थान में 'बहुचर देवी' के मन्दिर में किन्नर बनने के इच्छुक लोग आते ही रहते हैं। 'बहुचर देवी' किन्नरों की इष्ट है जिनका वाहन मुर्गा है। ये लोग खप्पर धारी देवी और शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की भी उपासना करते हैं।

महाभारत की एक अन्य कथा के अनुसार अर्जुन को द्रोपदी से विवाह की एक शर्त के उल्लंघन के कारण इन्द्रप्रस्थ से निष्कासित करके एक वर्ष की तीर्थयात्रा पर भेजा जाता है। तीर्थयात्रा करते हुए अर्जुन उत्तरपूर्व भारत में जाते हैं जहाँ उनकी मुलाकात एक विधवा नागकुमारी 'उलूपी' से होती है। दोनों विवाह कर लेते हैं। कुछ समय बाद 'उलूपी' एक पुत्र को जन्म देती है। जिसका नाम 'अरावन' रखा जाता है। कुछ समय पश्चात अर्जुन उन दोनों को वहीं छोड़कर अपनी आगे की यात्रा में निकल जाता है। अरावन नागलोक में अपनी माँ के साथ रहता है। युवा होने पर वह नागलोक छोड़कर अपने पिता के पास आता है। उस समय कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध चल रहा होता है। इसलिए अर्जुन उसे युद्ध करने के लिए रणभूमि में भेज देता है।

युद्ध में एक समय ऐसा आता है जब पाण्डवों को अपनी जीत के लिए माँ काली के चरणों में नरबलि देने के लिए एक राजकुमार की जरूरत पड़ती है। जब कोई भी राजकुमार आगे नहीं आता तो अरावन स्वयं को नरबलि हेतु प्रस्तुत करता है। अरावन ने बलि से पहले शर्त रखी कि वे स्वयं को बलि के लिए प्रस्तुत करने से पूर्व की रात एक सुन्दर स्त्री से विवाह करेगा। इस शर्त के कारण बड़ा संकट उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि कोई भी राजा यह जानते हुए कि अगले दिन उसकी बेटी विधवा हो जाएगी अरावन से अपनी बेटी का विवाह करवाने के लिए तैयार नहीं होता। जब कोई रास्ता नहीं बचता तो भगवान कृष्ण 'मोहिनी' रूप में आकर अरावन में शादी करते हैं। अगले दिन अरावन स्वयं अपने हाथों से अपना शीश माँ काली के चरणों में अर्पित करता है। अरावन की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण

पुरुष होते हुए भी स्त्री रूप में अरावन से विवाह करते हैं। इसीलिए किन्नर जो स्त्री रूप में पुरुष माने जाते है भी अरावन से एक रात की शादी रचाते हैं और अपना अराध्य देव मानते हैं।

तमिलनाडु के किन्नर अरावन की पूजा करते हैं। स्वयं को 'तरूअगाई' कहलाना पसन्द करते हैं जिसका हिन्दी में अर्थ है ईश्वर की पुत्रियाँ। वैसे तो अब तमिलनाडु के कई हिस्सों में भगवान अरावन के कई मन्दिर बन चुके हैं। पर इनका सबसे प्राचीन और मुख्य मन्दिर 'विल्लुपुरम' जिले के 'कुवगम' गांव में है। इस मन्दिर में भगवान अरावन के शीश की पूजा की जाती है। इस गांव में हर साल नव वर्ष की पहली पूर्णिमा को अट्ठारह दिनों तक चलने वाले उत्सवों की शुरूआत होती है। इस उत्सव में सम्पूर्ण भारतवर्ष और आस-पास के देशों के किन्नर एकत्र गोल घेरा बनाकर नाचते गाते है। बीच-बीच में ताली बजाते है और हँसी खुशी अरावन के विवाह की तैयारी करते हैं। सत्रहवें दिन पुरोहित द्वारा विशेष पूजा होती है। 'अरावन' देवता को नारियल चढ़ाया जाता है। उसके बाद अरावन देवता के सामने मन्दिर के पुरोहित के द्वारा किन्नरों के गले में मंगलसूत्र पहनाया जाता है जिसे थाली कहा जाता है। फिर अरावन मन्दिर में किन्नर अरावन से शादी रचाते हैं। अट्ठारहवें दिन सारे 'कूवगम' गांव में अरावन की प्रतिमा को घुमाया जाता है और फिर उसे तोड़ लिया जाता है। इसके बाद दुल्हन बने किन्नर अपना मंगलसूत्र तोड़ देते है। साथ ही चेहरों पर किए गए सारे श्रृंगार को मिटा देते हैं और सफेद वस्त्र पहनकर विधवाओं की भांति जोर-जोर से छाती पीटते हैं। जिन्हें देखकर आसपास के लोगों की आँखे नम हो जाती है और इसके बाद अरावन उत्सव खत्म हो जाता है।

सम्पूर्ण हिजड़े समुदाय को सामाजिक संरचना की दृष्टि से सात समाज या घरानों में बाँटा जा सकता है। हर घराने के मुखियां को नायक कहा जाता है। ये नायक ही अपने डेरे या आश्रम के लिए गुरु का चयन करते है। हिजड़े जिनसे शादी करते हैं उन्हें अपना पति मानते हैं। उन्हें गिरिया कहते है। उनके नाम का करवाचौथ रखते हैं। महाभारत काल से लेकर मुगलकाल तक इनका राजमहलों में विशिष्ट स्थान हुआ करता था और ये मध्यकाल में हरमों की सुरक्षा हेतु सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। नवम्बर 2009 में भारत सरकार ने इनको पुरुष एवं महिलाओं से अलग पहचान को स्वीकृति प्रदान की तथा निर्वाचन सूची में मतदान पहचान पत्रों पर इनका अन्य के तौर पर उल्लेख किया गया। 15 अप्रैल 2015 को उच्चतम न्यायलय ने तीसरे लिंग के रूप में इनके अधिकारों को मान्यता प्रदान की और सभी आवेदनों में तीसरे लिंग का उल्लेख अनिवार्य कर दिया। इतना ही नहीं उच्चतम न्यायालय ने इन्हें बच्चा गोद लेने का अधिकार भी दिया और चिकित्सा के माध्यम से पुरुष या स्त्री बनने का अधिकार भी दिया है।

लेकिन आज भी समाज में इन्हें अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। कोई न तो इन्हें अपने घर बुलाना पसन्द करता है और न ही इनसे सामाजिक सम्पर्क रखना चाहता है। उलटा जब किसी शुभ अवसर पर यह घरों में जाकर बधाइयाँ माँगने जाते हैं, तो गृहस्वामी जल्द-से-जल्द मुँह माँगी रकम देकर इनसे पीछा छुड़ाना चाहते हैं।

साहित्यिक दृष्टिकोण से आजकल अनेक विमर्शों की चर्चा की जा रही है और समाज के अनके उपेक्षित लोगों पर साहित्य में चिन्तन हो रहा है किन्तु लिंग निरपेक्ष समाज बहिष्कृत किनर समुदाय के विषय में कोई बड़ी चर्चा नहीं की जा रही है। साहित्य के अतीत पर नज़र दौड़ाएँ तो पाते हैं कि पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की कुछ कहानियों में जिन लौंडेबातों का जिक्र आता है वे यही किनर हैं। इसके बाद लम्बे समय तक साहित्य क्षेत्रों में किन्नरों की दशा के बारे में चुप्पी छायी रहती है। जिसे 1999 में नीरजा माधव अपने उपन्यास 'यमदीप' में तोड़ती है। तत्पश्चात् सन् 2011 में प्रदीप सौरभ अपने उपन्यास 'तीसरी ताली' की कथा दिल्ली के सिद्धार्थ हाउसिंग इन्क्लेव सोसाइटी से कर इसकी परिणति किन्नरों के तीर्थ स्थल कूवगम में करते हैं और इस बहाने वह तथा कथित सभ्य समाज के साथ इसकी चर्चा करते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा' सन् 2014 में प्रकाशित उपन्यास है जिसमें लेखक ने एक राजवंश में पैदा हुई किन्नर लड़की सोना के संघर्ष का वर्णन किया है। किन्नर 'लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की अंग्रेजी में लिखित आत्मकथा 'मी हिजड़ा मी लक्ष्मी' शीर्षक से आई है। इसका हिन्दी अनुवाद 'मैं हिज़ड़ा मैं लक्ष्मी' नाम से प्रकाशित हुआ है।

किन्नर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी के संघर्ष के परिणामस्वरूप ही अप्रैल 2015 में उच्चतम न्यायालय ने किन्नरों को तीसरे लिंग की मान्यता प्रदान की है।

कथाकार महेन्द्र भीष्म अपनी रचना 'मैं पायल' उपन्यास में बताना चाहते हैं कि घर में असामान्य बालक पैदा होने पर घर के लोग समाज से कैसे डरते हैं। वह लोगों से समाज से उसे छिपाकर रखना चाहते है। उसके साथ दोगला व्यवहार किया जाता है। उसके पिता उससे मारपीट करते हैं 'पिता जी ने पास रखी बाल्टी में भरे पानी से मुझे नहला दिया, फिर वही रखी चप्पल को टब में भरे पानी में डुबाडुबाकर मेरे नग्न शरीर की चमड़ी उधेड़ने लगे। रस्सी का एक छोर बांधकर उसे मारने के लिए फंदा गर्दन में बाँध उसे फांसी दे दी थी।' पर पायल वहाँ से बचकर भाग जाती है। पर बाहरी समाज का और भी क्रूर रूप उसे देखने को मिलता है। वह वेश बदलकर

लड़के के रूप में काम करना चाहती है पर उसके साथ के नौकर के दुर्व्यवहार के कारण वह वहाँ से चली जाती है। हिजड़े उसे अपने डेरे में ले जाते हैं। वह बताती है उन्हें भीख माँगकर जीवनयापन करने के लिए मजबूर किया जाता है। किसी विकलांग बालक को यदि घर में पाल-पोसकर बड़ा किया जा सकता है, तो किसी किन्नर बालक को घर पर जीने का अधिकार क्यों नही ?

एक अन्य उपन्यास 'पोस्टबॉक्स नं. 203-नाला सोपारा' चित्रा मुद्‌गल की रचना है जिसमें हिजड़े बालक की वेदना को बताया गया है। बिन्नी बिमली नाम का लड़का हिजड़ा है पढ़ने-लिखने में अत्यन्त होशियार पर समाज के भय से उसे किन्नर समाज को सौंप दिया जाता है। माँ के लिए अपने बेटे को दूर करना बहुत कष्टमय था। वहाँ पूनम नाम की किन्नर बिन्नी की मदद करती है। वह बिन्नी को पढ़ाने के लिए पैसा इकट्ठा करती है। उसे माँ से मिलने के लिए अपनी जमा राशि से मुम्बई भेजती है। बिन्नी की माँ के मन में अपने बेटे के प्रति संवेदना है "क्या मैं सचमुच दुनिया की सबसे खुबसूरत माँ हूँ। कैसे हो सकती हूँ बिन्नी। मेरे बच्चे ! तुझे दुःख है न मैंने और तेरे पापा ने तुझे नरक में क्यों धकेल दिया, इसके बावजूद ?"

महेन्द्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' में दिखाया गया है कि केवल मध्यवर्गीय लोग ही नहीं राजघराने के लोग भी उन्हे अपनाने से डरते हैं। इस उपन्यास में बताया गया है कि महाराजा जगतसिंह के घर दो जुड़वां राजकुमारियों सोना और रूपा का जन्म हुआ। माँ कुछ दिनों तक यह बात सबसे छिपाकर रखती है कि सोना किन्नर है। कुछ दिनों बाद महाराजा को पता चलता है कि सोना हिजड़ा है, तो वह उसे अपने दीवान के हाथों मारने के लिए सौंप देता है। दीवान का हृदय बच्चे को देखकर पिघल जाता है और वह उसे मार नहीं पाता। दीवान उस बच्चे को किन्नर गुरु तारा के पास छोड़ देता है उसे सब कुछ बताता है कि इस नन्हीं बच्ची के प्राण वह ले नहीं पाया इसलिए इसे लेकर यहाँ आ गया। लेखक ने उपन्यास में स्पष्ट किया है। 'संतान कैसी भी हो उसमें शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो, माता-पिता को अपनी सन्तान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है, फिर भले ही यह संतान हिजड़ा ही क्यों न हो। फिर भी सामाजिक परिस्थितियाँ, खानदान की इज्जत मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते हैं।'

नीरज माधव का उपन्यास यमदीप 2005 में मानवी और आनन्द कुमार के माध्यम से किन्नरों के संघर्ष को उद्घाटित किया गया है। लेखिका कहती है कि 'यदि किन्नरों की बकाया धन वसूली काम सौंपा जाए तो वह चुटकी बजाकर वसूल कर लेगी।' किन्नरों की अवहेलना करने की बजाए उन्हें रोजगार दिलाया जाना चाहिए तभी वह अपनी पारम्परिक भूमिका से बाहर आ सकेगें।

इसी प्रकार कुसुम अंसल की कहानी 'ई मुर्दन का गाँव' में भी लैंगिक विकृति से पीड़ित लोगों की व्यथा को दर्शाया गया है। इस कहानी में किन्नर जया कहती है 'बांझ औरत हमारे पास बच्चे की कामना से आती है और ताज्जुब है हमारा आशीर्वाद फलता भी है, किसी भी बच्चे का जन्म हमारे नाच गाने के बिना पूरा नहीं होता। आशीर्वाद देते हैं. कहानी में किन्नरों के माध्यम से उनकी व्यथा को उजागर किया गया है। अलिंगी पैदा होना उनके लिए अभिशाप है लेकिन उन्हीं का आशीर्वाद लोगों के जीवन में रंग भर देता है।

डॉ. लवलेश दत्त की कहानी 'नवाब' चरित्र प्रधान है इसमें कहानीकार ने हिजड़ों के विभिन्न गुणों करूणा, दया, प्रेम आदि को रेखांकित किया है। यह कहानी नवाब नाम के हिजड़े की है, जो हिजड़ा होने के बावजूद अन्य हिजड़ों से कई गुना सभ्य है। विशेष अवसरों पर घरों से जाकर बधाई लेता है। एक दिन उसे मन्दिर के पास झाड़ियों में फेंकी गई बालिका मिलती है तब वह उसका पालन-पोषण करने की जिम्मेदारी लेता है। पर हमारा समाज नारी और हिजड़ों दोनों के प्रति नकारात्मक सोच रखता है। नवाब को ताने मिलते हैं यह लड़की माल है बुढ़ापे के काम आएगी। हार कर वह उसे नारी निकेतन भेज देता है। जब जया की शादी होने लगती है तो उसे कन्यादान नहीं करने दिया जाता तब जया ही कहती हैं यही मेरे माँ बाप हैं मुझे मौत के मुँह से बचाया अगर मेरे से शादी करना है तो बापू ही कन्यादान करेंगे।' वे कहती है कि मुख्यधारा के लोग हिजड़ों को उपेक्षित करना आता है पर उनकी भावनाओं को कभी समझा नहीं जाता। वाकई उनमें कितने गुण हैं, जो समाज के लोगों में नहीं हैं। रू

शिवप्रसाद सिंह रचित कहानी 'बिन्दा महाराज' एक ऐसे किन्नर की कहानी है जिसके जन्म लेने के बाद उसके माता-पिता की मृत्यु हो जाती है। उसको जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका शरीर अपूर्ण है पर मन में अनेक भावनाएँ हैं, संवेदनाएँ हैं। वह अपना सम्पूर्ण प्रेम और ममत्व चचेरे भाई करीमा पर न्योछावर करता है बदले में उसका भाई उसका अपमान करता उसे घर से निकाल देता है- 'था ही कौन अपना, जो पैरों में रेशमी बेड़ियाँ डालकर रोक रखता। माँ बाप एक प्राण-हीन शरीर उपजाकर चले गए। मर्द होता तो बीवी बच्चे होते और यदि औरत होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता।

डॉ. सूरज बड़ल्या की कहानी 'कबीरन' में एक हिजड़ी लड़की पर हुए अत्याचारों का वर्णन है। 'कबीरन' नाम की लड़की पैदा होते ही उसे अनाथालय भेज दिया जाता है। ट्रेनों में भीख मांगकर अपना गुजारा करती है। अनाथालय में भी उसके साथ दुर्व्यवहार किया

जाता है। जब उसका भाई सुमेध उसे वापिस घर ले जाने आता है, तो वह मना कर देती है कहती है 'तुम मेरे अपने हो और अपनों से लड़ना जोखिम भरा एडवेंचर होता है। पर हमें याद रखना है। डिग्निटी इज़ मोर इंपोटेंट 'मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकती।' मैं ही तुम्हारे समाज में क्यूं आऊँ? तुम क्यों नहीं आते हमें मुक्त कराने हमारे समाज में?'' तकबीरन ऐसे कितने बालिका किन्नर है जिन्हें परिवार भी त्याग देता है और समाज भी। वह अपने भाई से जाति, धर्म, स्त्री-पुरुष के भेदभाव जैसी समस्याओं को मिटाने के लिए कहती हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि किन्नर समाज की विकराल समस्याओं को सुलझाने के लिए कोई-न-कोई रास्ता अवश्य निकाला जाना चाहिए। हिन्दी कथा-साहित्य में किन्नर की इन्हीं समस्याओं को वाणी दी गई है। किन्नर के रूप में जीवन जीना कितना कठिन है। अलग-अलग किन्नर विषयक हिन्दी उपन्यासों एवं कहानियों को पढ़कर उनकी पीड़ा को समझा जा सकता है। आज समाज में उनके लिए कानून बन रहे हैं उन्हें पहचान मिल रही है पर किन्नरों को इन आपदाओं से उभारने के लिए अभी और प्रयासों की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-सूची :

1. लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोष, संपा. रामचन्द्र वर्मा, पू-157
2. तुलसीदास, रामचरित मानस (अयोध्या-कांड)
3. महेन्द्र भीष्म, मैं पायल, पृ-36
4. चित्रा मुद्रल, पोस्ट बोक्स न. 203-नाला सोपारा पृ-2
5. महेन्द्र भीष्म, किन्नर कथा, पृ-45
6. नौरज माधव यमदीप, पृ-6
7. कुसुम अचल, मेरी दृष्टि तो मेरी है, पृ-107
8. डॉ. सूरज बडत्या, कबीरन, पृ-11
9. शिवप्रसाद सिंह, बिन्दा महाराज, पृ-26

असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी-विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

मानवीय मूल्यों सो ओतप्रोत राम

-डॉ. अवधेश कुमार चंसौलिया

भारतीय वाङ्मय में सैकड़ों नहीं, हजारों ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अपने सचरित्र के कारण किसी न किसी रूप में लोगों को प्रभावित करते रहते हैं। उनकी अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताएँ हैं-नहुष, राजा हरिश्चंद्र, दधीचि, अंबरीष, भागीरथ, परशुराम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, भीष्म, कर्ण, महावीर स्वामी, बुद्ध, गुरु नानक, विवेकानंद, महात्मा गाँधी आदि। ईश्वरों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, श्रीकृष्ण आदि। लेकिन भारतीय जनमानस को जितना प्रभावित श्रीराम जी ने किया है, उतना किसी अन्य व्यक्ति और व्यक्तित्व ने नहीं। श्रीराम जो सूर्यवंशीय होने के कारण 12 कलाओं के अवतार माने जाते हैं और श्रीकृष्ण जी चंद्रवंशीय होने के कारण 16 कलाओं के अवतार माने जाते हैं। 16 कलाओं के कारण श्रीकृष्ण जी पूर्ण माने गए हैं, लेकिन 12 कलाओं के कारण श्रीराम उनसे कुछ कमतर माने जाते हैं। ज्ञान में वे भले ही श्रीकृष्ण जी से कुछ कम हों, लेकिन व्यवहार में वे श्रीकृष्ण जी से विशिष्ट हैं। इसीलिए मानव समाज में वे अधिक घुले-मिले हैं।

सुबह उठते ही लोग आपस में 'राम-राम' करके अभिवादन करते हैं। जब भी कोई परिचित-अपरिचित आपस में मिलते हैं, तो वे परस्पर 'राम-राम' ही कहते हैं। अंतिम यात्रा के समय भी लोग 'राम नाम सत्य है' कहते हुए मुक्तिधाम जाते हैं। गणना का प्रारंभ 'राम है' कहकर किया जाता है। पश्चाताप और गलती होने पर 'राम-राम' कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि राम भारतीय जनमानस के रोम-रोम में समाए हुए हैं। परिवार में कोई संकट आता है, तो राम के चरित्र की पड़ताल की जाती है। भाइयों में परस्पर प्रेम-भाव हो तो कहा जाता है कि ये तो 'राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न' की जोड़ी है। हर कोई राम जैसा भाई, सीता जैसी पत्नी, हनुमान जैसा सेवक, सुग्रीव जैसी मित्रता, राम जैसा पुत्र और राम जैसा राजा चाहता है।

राम आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं, पूर्ण पुरुष हैं। उनके जीवन से हम प्रेरणा लेकर सतत रूप से आगे बढ़ सकते हैं। वे अपने सदाचरण से राज-परिवार के ही नहीं, अपितु संपूर्ण अयोध्या वासियों के प्रिय हैं। उनके अंदर सहयोग की भावना कूट-कूट कर भरी है। वे किसी की निंदा नहीं करते, मिथ्या भाषण नहीं करते; सत्य बोलते हैं, कम बोलते हैं और मीठा बोलते हैं। सबसे प्रेम भाव रखना उनके स्वभाव में है।

न्याय के पक्षधर हैं वे। अपने शत्रु के प्रति भी वे विनयशील रहते हैं। भेदभाव से बहुत दूर हैं। सभी माताओं को समान दृष्टि से देखने वाले हैं, भाइयों से अटूट प्रेम करते हैं। मंत्री सुमंत से सम्मानपूर्वक बात करते हैं। वे उन्हें पिता के समकक्ष मानकर उनके प्रति विनयशील रहते हैं। प्रात:काल उठकर माता-पिता और गुरु को प्रणाम करते हैं:

'प्रात:काल उठि कै रघुनाथा, मातु-पिता गुरु नावहिं माथा।' (बालकांड, तुलसीदास) जब माता कैकेयी उन्हें वनवास देती हैं, तब भी वे विचलित नहीं होते। उन्हें भला-बुरा नहीं कहते, बल्कि उन्हें सम्मान देते हुए कहते हैं कि 'माँ, वहाँ तो मुझे लाभ ही लाभ है। ऋषि-मुनियों के दुर्लभ दर्शन होंगे। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी देखने को मिलेंगे। मुझे आपके वचनों को पूर्ण करने का बहुत सुंदर अवसर मिला है। यह मेरा सौभाग्य है। '

'सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी, जो पितु मातु बचन अनुरागी।' (अयोध्याकांड, तुलसीदास)

यहाँ गौर करने की बात यह है कि 'जननी' उसे कहा जाता है जो जनन करे, अर्थात जो संतान को उत्पन्न करती है। श्रीराम का जनन माता कौशल्या ने किया, अत: कौशल्या श्रीराम की जननी हुईं, न कि कैकेयी। लेकिन श्रीराम जी माता कैकेयी को 'जननी' कह रहे हैं। इससे बढ़कर कैकेयी का सम्मान और क्या हो सकता है? भरत को राज्य देना और स्वयं के लिए वन जाने की आज्ञा को वे अपना सौभाग्य मान रहे हैं, यही श्रीराम के चरित्र का वैशिष्ट्य है।

भाइयों का प्रेम भी उल्लेखनीय है। कैकेयी ने अपने पुत्र भरत को उनकी अनुपस्थिति में चक्रवर्ती राजा बना दिया। उन्हें तो प्रसन्न होना चाहिए था, क्योंकि बिना लड़े-भिड़े उन्हें अनायास अयोध्या का इतना विशाल साम्राज्य मिल गया; लेकिन वे उसे स्वीकार नहीं करते और बड़े भाई श्रीराम को राज्य वापस देने के लिए उनके वनवास स्थल चित्रकूट जा पहुँचे। आज हम एक-आधे बीघे के लिए अपने

सगे भाई और माता-पिता की हत्या कर देते हैं, वहीं भरत और राम राज्य को स्वीकार नहीं कर रहे हैं। इतना विशाल साम्राज्य फुटबॉल बना इस पाले से उस पाले में जा रहा है। यदि हम श्रीराम और भरत से सबक ले लें, तो विश्व में संपत्ति तथा साधनों के लिए होने वाली हिंसा से बचा जा सकता है।

वनवास के समय सर्दी, गर्मी एवं बरसात में भी वे 'उफ़' तक नहीं करते। नंगे पैर चल रहे हैं, प्रकृति की भयंकरता को सहन कर रहे हैं। राक्षसों से लोहा ले रहे हैं, लेकिन माता-पिता को कोस नहीं रहे। बल्कि उनकी आज्ञा प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करके कष्ट सह रहे हैं। इसलिए राम जैसा बेटा सभी माता-पिता चाहते हैं। चित्रकूट में वे सर्वप्रथम कैकेयी माँ से मिलते हैं और अयोध्या लौटने पर भी वैसा ही करते हैं। यही विशेषता उनको महान बनाती है। उनका आचरण उनको 'स्थितप्रज्ञ' बनाता है। वे सुख-दुख में समान रहते हैं।

राम ने सुग्रीव से मित्रता का भाव भी पूरी निष्ठा से निभाया। बालि का वध करके किष्किंधा का राजा सुग्रीव को बना दिया। शरणागत हुए विभीषण का राजतिलक कर राजा के रूप में यथोचित सम्मान किया और रावण की मृत्यु के पश्चात् उसे लंका का राज्य सौंप दिया। चाहते तो श्रीराम लंका को अपने साम्राज्य में मिलाकर राज्य विस्तार कर सकते थे या स्वयं अधिपति बन सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। यहाँ तक कि लंका का पुष्पक विमान भी उसके वास्तविक स्वामी कुबेर के पास वापस भेज दिया। राम की यह उदारता भी उनको सर्वश्रेष्ठ घोषित करती है।

श्रीराम एक बहुत बड़े राज्य के स्वामी हैं, लेकिन उनके अंदर न तो अहं-भाव है और न ऊँच-नीच की भावना। वे वनवास के समय अपने अधीन आने वाले छोटे से आदिवासी राजा निषादराज गुह को गले लगाकर उसे भरत के समान भाई का दर्जा देते हैं। मातंग ऋषि की शिष्या शबरी से वे माता के समान मिलते हैं और भावातिरेक में उनके द्वारा दिए गए जूठे बेरों को बड़े चाव से खा लेते हैं। इतना ही नहीं, सुग्रीव के शासनाधीन अनेक भालुओं, बंदरों और रीछों से निश्छल होकर मिलते हैं, उनकी कुशलक्षेम पूछते हैं तथा उनको साथ लेकर रावण का वध करते हैं। राम की इस आत्मीयता से वानर जाति के सभी वन्यजीव संगठित होकर जी-जान से उनका साथ देते हैं।

राम जी जब अयोध्या से चले थे तब उनके पास कुछ भी नहीं था, लेकिन उनके पास शाश्वत मानवीय गुण और संगठन की अद्भुत क्षमता थी। नेतृत्व की सूझ-बूझ और निडरता का भाव उनके अंदर कमाल का था। राक्षसों की बड़ी से बड़ी सेना को देख कर भी उन्होंने कभी धैर्य नहीं छोड़ा। उन्होंने निर्भीक होकर अपने अतुलनीय पराक्रम से उनको परास्त कर विजय का मार्ग प्रशस्त किया। खर, दूषण, त्रिशिरा, सुबाहु और उनकी चौदह हजार सेना को अकेले ही मार डाला और मारीच को सैकड़ों योजन दूर समुद्र तट पर फेंक दिया।

शिव के धनुष 'पिनाक' को तो उन्होंने किशोरावस्था में ही तोड़कर सीता जी से विवाह की शर्त पूरी कर उनका वरण कर लिया। वे जितने शक्तिशाली हैं, उतने ही शीलवान भी हैं। उन्हें 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहा जाता है क्योंकि उन्होंने कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। उनको राज्य से वंचित कर उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ, राक्षसों ने उन पर अकारण आक्रमण किए, सीता माता का अपहरण हुआ, लेकिन फिर भी उन्होंने संयम और मर्यादा को बनाए रखा। वे वीर योद्धा हैं। चाहते तो वनवास नहीं जाते-प्रजा उनके साथ थी, प्रशासन भी उनके साथ था; लेकिन उन्होंने पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके वनवास का मार्ग चुना। लोग उन पर सीता माता के निष्कासन और शंबूक वध का आरोप लगाते हैं, लेकिन उन्होंने जो भी किया वह 'राजधर्म' के पालनार्थ किया। राजा का जीवन उसका व्यक्तिगत नहीं होता, वह प्रजा के अधीन रहता है। उस समय के विधान के अनुसार और प्रजावत्सल श्रीराम ने प्रजा की इच्छा के अनुसार ये कड़े फैसले लिए। आज कोई भी व्यक्ति यह नहीं सोच सकता कि इन दोनों फैसलों के वक्त उनको कितनी पीड़ा हुई होगी। शंबूक वध के समय उनके हाथ काँप रहे थे।

वे बल और वीर्य से सम्पन्न हैं। वे आतताइयों से बहुत कड़ाई से निपटते हैं और उनका संहार भी करते हैं। मृत ऋषि-मुनियों की हड्डियों के ढेर देखकर वे प्रतिज्ञा करते हैं:

'निशिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।' (अरण्यकांड, तुलसीदास)

वही राम सीता माता के अपहरण के समय इतने व्याकुल हो जाते हैं कि जनस्थान में पेड़-पौधों से पूछ रहे हैं:

'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।' (अरण्यकांड, तुलसीदास)

क्या ऐसा कोई व्यक्ति स्वेच्छा से ऐसे कठोर निर्णय ले सकता है? लेकिन जनता की इच्छा ऐसी ही थी, इसलिए उन्हें वह करना पड़ा। राजतंत्र होते हुए भी उन्होंने अपने राज्य को प्रजातंत्र की तरह चलाया, तभी तो वे कहते हैं:

'जौ अनीति कछु भाषौ भाई, तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।' (उत्तरकांड, तुलसीदास)

इससे बढ़कर उनका प्रजातंत्र और क्या हो सकता है? ऐसा तो आज के लोकतंत्र में भी संभव नहीं है।

आज के कुछ लोग शूर्पणखा के नाक-कान काटने को गलत मानते हैं और कहते हैं कि श्रीराम ने झूठ बोला कि लक्ष्मण का विवाह नहीं हुआ। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम जी शूर्पणखा से कहते हैं कि 'मेरे पास तो स्त्री है, लक्ष्मण के पास इस समय यहाँ स्त्री नहीं है।' यहाँ वे झूठ नहीं बोल रहे हैं। वे साफ कह रहे हैं कि वनवास में मेरे संग मेरी स्त्री है, परंतु मेरे भ्राता लक्ष्मण के पास यहाँ वन में स्त्री नहीं है।

'अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः। श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥ अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः। अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति॥' (अरण्यकांड, वाल्मीकि रामायण)

हाँ, तुलसीदास जी ने लक्ष्मण के लिए 'कुँआरा' शब्द का उपयोग किया है:

'सीतहि चितइ कही प्रभु बाता, अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।' (अरण्यकांड, तुलसीदास)

हो सकता है वे तुक मिलाने के लिए इसका प्रयोग कर गए हों, या प्रतिलिपि करते समय लेखक से यह गलती हो गई हो। ऐसी ही त्रुटि 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' वाले प्रसंग में भी चर्चित है, जहाँ 'शूद्र' के स्थान पर कुछ विद्वान 'क्षुद्र' शब्द बताते हैं।

युद्ध क्षेत्र में रावण को जब राम जी निशस्त्र कर देते हैं और उसका रथ भी छिन्न-भिन्न हो जाता है, ऐसी स्थिति में कोई और होता तो उस पर वार कर देता। लेकिन राम जी ने कहा- 'जाओ रावण, कल आना युद्ध करने; आज तुम ऐसी स्थिति में नहीं हो कि युद्ध कर सको।' ऐसी उदारता, शीलता और धैर्य केवल राम में ही हो सकता है। लंका पर चढ़ाई के पूर्व भी वे रावण के पास दूत के रूप में वीर अंगद को शांति का संदेश देकर भेजते हैं। उनका कहना था कि यदि रावण सीता जी को सम्मानपूर्वक वापस कर दे, तो हम युद्ध नहीं करेंगे। वे नहीं चाहते थे कि लंका में व्यर्थ की जनहानि हो। लेकिन रावण ने शांति प्रस्ताव खारिज कर दिया और विवश होकर श्रीराम को युद्ध करना पड़ा। लंका विजय का श्रेय वे वानरों, भालुओं और अपने गुरु वशिष्ठ जी को देते हैं। सच्चे पराक्रमी के यही गुण होते हैं। इस तरह वे अपने गुरु और साथियों के प्रति कृतज्ञता, विनम्रता एवं आदर का भाव ज्ञापित करते हैं। इतना ही नहीं, पुष्पक विमान को भी उन्होंने उसके वास्तविक मालिक कुबेर के पास भेजने के लिए मुक्त कर दिया। इससे सिद्ध होता है कि वे धन-संपदा के लोभी नहीं हैं। वे संयमी इतने हैं कि वनवास के समय सीता उनके साथ रहती हैं, लेकिन कभी उन्होंने प्रेम की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। सम्राट होते हुए भी उन्होंने आजीवन 'एक पत्नी व्रत' धर्म का पालन किया। उनके राज्य में सभी प्रकार की सुख-समृद्धि है। उनके शासन और न्याय से सब प्रसन्न हैं:

'राम राज्य बैठे त्रैलोका, हरषित भये गये सब शोका। बयरु न कर काहू सन कोई, राम प्रताप बिषमता खोई।' (उत्तरकांड, रामचरितमानस)

रामराज्य में कोई बीमार नहीं होता, किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती। प्रकृति हरी-भरी है, खेत अनाज से भरपूर हैं। बादल माँगने पर जल वर्षा कर देते हैं। सर्वत्र शांति है, लोग सदाचारी हैं। ऐसे ही रामराज्य की परिकल्पना आज की सरकारें कर रही हैं। राम का चरित्र दुनिया में सदैव प्रासंगिक और प्रेरणास्रोत बना रहेगा। यदि समाज और राष्ट्र श्रीराम के आदर्शों पर चलें, तो निश्चित ही संसार की समस्याओं का समाधान होकर शांति स्थापित हो जाएगी।

डी.एम. 242, दीनदयाल नगर, ग्वालियर - 474005
मोबाइल: 9425187203
ईमेल: akchansauliav-z}@gmail.com

कृष्ण काव्य-परंपरा और `कनुप्रिया'

-डॉ. आस्था प्रसाद

हिंदी साहित्य के इतिहास में कृष्ण काव्य का एक विशेष महत्व है। राम और कृष्ण काव्य से हिंदी साहित्य समृद्ध हुआ है और समाज को एक दिशा प्राप्त हुई है। एक ओर जहां राम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किए गए हैं, वहीं श्री कृष्ण लीलाधर, लोक रंजनकारी, कहीं गीता का उपदेश देते हुए, तो कहीं योद्धा के रूप में चित्रित किए गए हैं। श्री कृष्ण के विविध रूपों में लौकिक और अलौकिक लीलाओं का वर्णन मिलता है। गीता, महाभारत व विविध पुराणों में उनके विविध रूपों के दर्शन होते हैं। वह अगर एक ओर गोपियों से रास रचाते हैं, लीला करते हैं, तो दूसरी ओर धर्म और राजनीति में भी कुशल हस्तक्षेप करते हैं।

कृष्ण भक्ति काव्यधारा के कवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं को मुख्य आधार बनाकर वृहद साहित्य की रचना की है। बारहवीं शताब्दी में जयदेव ने सर्वप्रथम राधा-कृष्ण को आधार मानकर 'गीतगोविंद' की रचना की, जिसमें भक्ति और शृंगार का अनुपम संयोग दृष्टिगत है। लोक प्रचलित आख्यानों और गीतों के सम्मिलन से उन्होंने इस गीतिकाव्य की रचना की होगी, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसी लोक परंपरा की अगली कड़ी के रूप में कवि शिरोमणि विद्यापति ने राधा-कृष्ण के शृंगार पक्ष पर लिखा। उन्होंने अपने पदों की रचना मैथिली में की। कुछ विद्वान इसे कृष्ण काव्य-परंपरा में प्रथम रचना के रूप में स्वीकार करते हैं।

कृष्ण काव्य-परंपरा में अत्यंत लोकप्रिय और प्रसिद्ध नाम भक्त शिरोमणि सूरदास का आता है। उन्होंने कृष्ण के बाल रूप का जैसा वर्णन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कृष्ण के कई रूपों का चित्रण सूरदास ने इस तन्मयता से किया है कि एक रसमय मधुर संसार की सृष्टि हो जाती है। सूरसागर में श्री कृष्ण के गोकुल, मथुरा और वृंदावन में की गई लीलाओं के रूप विद्यमान हैं। कृष्ण के जन्म, शैशव, ग्वाल-बाल संग लीला, गोचारण, गोपियों संग रास, छद्म वेश में असुरों का वध, असुरों के प्रकोप से सामान्य जन की रक्षा इत्यादि ऐसे प्रकरण हैं, जो जितने लोकरंजक हैं उतने ही मनभावन भी हैं।

श्री कृष्ण के परम भक्त हित हरिवंश गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए भी भक्ति मार्ग पर अनवरत चलते रहे और सन् 1533 में वृंदावन पहुंचे। यहां पहुंचकर उन्होंने मानसरोवर, वंशी वट, सेवा कुंज तथा रास मंडल नामक चार सिद्धस्थलों की स्थापना की। अपनी उपासना पद्धति की संस्थापना और प्रचार-प्रसार हेतु इन्होंने सेवाकुंज में अपने इष्टदेव राधावल्लभ का विग्रह स्थापित किया तथा 1554 में पाटोत्सव संपन्न करवाया। वह मंदिर आज भी वहां है पर प्राचीन विग्रह प्रतिष्ठित नहीं है। हित हरिवंश के आगमन के पश्चात स्वामी हरिदास, हरिराम व्यास, प्रबोधानंद सरस्वती आदि महान भक्तों का आगमन यहां हुआ और एक मधुर, सरस, भक्तयात्मक भक्ति-धारा का संचार हुआ। कृष्ण भक्ति की नई शाखा में 'रास' का विशेष महत्व था। अतएव एक रासमंडल की स्थापना हुई। इनका मानना था कि भक्ति के लिए प्रेम और हित की भावना सर्वोपरि है। हरिवंश जी ने इस उपासना पद्धति को 'रासोपासना' कहा। हरिवंश गोस्वामी द्वारा रचित चार ग्रंथ हैं- 'राधा सुधा निधि' और 'यमुनाष्टक' (ये दोनों संस्कृत में हैं) तथा 'हित चौरासी' और 'स्फुट वाणी' हिंदी में हैं।

कृष्ण काव्य-परंपरा में यदि हम मीराबाई का नाम न लें तो यह अलोना (बिना नमक का) भोज्य पदार्थ जैसा ही होगा। मीराबाई ने अपने मधुर और अनन्य भक्तिपरक पदों की रचना करके हिंदी साहित्य को गरिमामय और परिपूर्ण किया। मीराबाई भक्ति युग की एक अनमोल रत्न हैं। रसखान, जो कृष्ण के अनन्य भक्त थे, उन्होंने 'प्रेम वाटिका' और 'सुजान रसखान' की रचना करके श्री कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया।

कृष्ण भक्तिधारा रीतिकाल में भी प्रवाहित हुई, किंतु इस काल में इस पर रीति का आवरण चढ़ा हुआ पाते हैं। हिंदी साहित्य कोश में कहा गया है- 'माधुर्य भक्ति और लौकिक श्रृंगार का अंतर तर्क और वाद-विवाद के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। तर्क के आधार पर बड़े-बड़े भक्त कवियों के माधुर्य-भाव को मानसिक रुग्णता और दमित वासना का प्रकाशन कहकर निंदित किया जा सकता है, परंतु कला में यदि उदात्तीकरण की स्थिति स्वीकार्य है तो कृष्ण-भक्ति काव्य उसका सर्वोत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।' रीतिकालीन कवि भी सर्वदा लौकिक वासनात्मक प्रेरणा से ही काव्य रचना में प्रवृत्त होते रहे हों, यह भी दावे के साथ नहीं कहा जा सकता। अनेक रीतिकालीन कवियों में प्रायः भक्ति भावना की प्रेरणा शक्ति झलक जाती है और उनकी चित्तवृत्ति सांसारिकता से ऊपर

उठती हुई जान पड़ने लगती है। फिर रीतिकाल में काव्य की धारा क्षीण भले ही पड़ गई हो, टूटी कदापि नहीं। (हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ 208)

आधुनिक काल में कविवर रामधारी सिंह दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' और धर्मवीर भारती जी की 'कनुप्रिया' का उल्लेख करना समीचीन होगा। एक ओर 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और शांति की समस्या पर दृष्टिपात किया गया है, तो दूसरी ओर 'कनुप्रिया' की राधा है जो प्रेम के उत्कर्ष की प्रतिमूर्ति है। दोनों में कृष्ण के अनन्य रूप के दर्शन होते हैं।

आज भागमभाग की जिंदगी में कुछ पल शांति के मिलें तो यही परम सुख है। 'कनुप्रिया' वह मधुर राग है जो कोलाहल भरे जग में शांति की छांव देती है और तप्त थके हृदय को अपरिमित तोष देती है। कृष्ण कितने भी वीतराग हों, कितने ही निर्लिप्त हों, किंतु फिर भी 'संपूर्ण के लोभी' हैं। ऐसी संपूर्णता जो नर और नारायण के समागम से ही उपलब्ध हो सकती है। निराशा और वेदना की घड़ियों में मन उनकी प्रिया की ओर ही मुड़ता है। आखिरकार धर्म-अधर्म, सही-गलत सभी तर्क छोड़ प्रेम, राधा और समर्पण की ओर ही मुड़ना होगा।

राधा या कनुप्रिया कहती है:

शब्द, शब्द, शब्द...
कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व...
मैंने भी गली-गली सुने हैं ये शब्द,
अर्जुन ने चाहे इनमें कुछ भी पाया हो,
मैं सुनकर कुछ भी नहीं पाती प्रिय,
सिर्फ राह में ठिठक कर तुम्हारे उन अधरों की कल्पना करती हूं,
जिनसे तुमने ये शब्द पहली बार कहे होंगे (कनुप्रिया)

राधा को इन बातों से कोई लगाव नहीं है। वह तो शांति और प्रेम की प्रतिमूर्ति है। अनन्य प्रेम की, जहां राधा है, कनु है, आम्र-मंजरियां हैं, हवा है... बस। वह आगे कहती है, 'इन सब का अर्थ अर्जुन ने युद्ध से लिया और एक भीषण नरसंहार हुआ। पर राधा के सामने ये शब्द केवल शब्द हैं जो कृष्ण के होठों से रजनीगंधा के समान टप-टप बरसते हैं और राधा तक आते-आते अपना अर्थ ही खो देते हैं, रह जाता है तो सिर्फ राधन... राधन... राधन...।'

वह आगे कहती है:

'मैं कल्पना करती हूं कि
अर्जुन की जगह मैं हूं
और मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया है और मैं नहीं जानती कि युद्ध कौन-सा है
और मैं किसके पक्ष में हूं
और समस्या क्या है
और लड़ाई किस बात की है
लेकिन मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया है
क्योंकि तुम्हारे द्वारा समझाया जाना मुझे बहुत अच्छा लगता है' (कनुप्रिया)

भारती जी ने कनु और राधा के माध्यम से स्पष्ट करना चाहा है कि जीवन में प्रेम अमूल्य है। चरम साक्षात्कार के क्षणों में मनुष्य जिन उदात्त भावनाओं को अपने अंदर समेट लेता है, बस वही उसके जीवन का एकमात्र आधार होता है और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। 'जिसके चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण सारे इतिहास से बड़ा था, सशक्त था।'

और आगे कहती है कि कृष्ण के लिए क्या मैं एकमात्र सेतु थी- लीला भूमि और युद्ध क्षेत्र के अलंघ्य अंतराल की? आज- 'आज इन सूने शिखरों, मृत्यु घाटियों में बने सोने के पतले गुंथे तारों वाला पुल-सा निर्जन निरर्थक कांपता-सा, यह छूट गया- मेरा यह सेतु जिस्म जिसको जाना था चला गया।' (कनुप्रिया)

राधा कनु से कहती है कि अगर मेरे चरम तन्मयता के क्षण रंगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे, तो सार्थक फिर क्या है? कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व- ये मेरे लिए शब्द मात्र हैं, मैं इन्हें समझ नहीं पाती। ये मेरे लिए नितांत अर्थहीन हैं। इन सबके परे मुझे तो बस तुम्हारे कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व के सारे अर्थ मुझ तक आते-आते अपना अर्थ खो देते हैं और बस मेरे पास सिर्फ पुरानी स्मृतियां

और तन्मयता के क्षण शेष रह जाते हैं। युद्ध के बाद तुम भी तो थके-हारे, शिथिल और अनमने पड़ गए। राधा युद्ध के परिणाम की ओर संकेत करते हुए कहती है कि अंत में तुम थक-हार कर लौट कर मेरे वक्ष में सिर रखकर सो जाते हो, पर यह निद्रा नहीं है, सुषुप्तावस्था में भी तुम युद्ध के क्षणों और परिणाम को लेकर व्याकुल हो–

'नींद में तुम्हारे होंठ धीरे-धीरे हिलते हैं'

स्वधर्म!... आखिर मेरे लिए स्वधर्म क्या है?

'और लहरें थपकी देकर तुम्हें सुलाती हैं'

'सो जाओ योगीराज... सो जाओ... निद्रा समाधि है।'

नींद में तुम्हारे होंठ धीरे-धीरे हिलते हैं– 'न्याय-अन्याय, सद्-असद्, विवेक-अविवेक... कसौटी क्या है? आखिर कसौटी क्या है?'

और तुम्हें कोई कसौटी नहीं मिलती, युद्ध से कुछ भी नहीं प्राप्त होता। तुम्हें लौट कर आना ही था, क्योंकि जो इतिहास बनाने चले थे, उसमें मैं छूट गई थी, मैं तुम्हारे साथ नहीं थी। पर आज तुम लौट आए हो– क्लांत, श्रांत, शिथिल, थके-हारे... मैं तुम्हारे साथ हूं। तुमने उस असफल इतिहास को जीर्ण-वसन की भांति त्याग दिया है और इस क्षण अपने में डूबे हुए, दर्द में पके हुए, तुम्हें मेरी याद आई है। तुम्हारे इतिहास का मेरे बिना कोई अर्थ नहीं निकल सकता।

भारती जी ने 'कनुप्रिया' के माध्यम से युद्ध और प्रेम का बहुत ही सुंदर और मार्मिक वर्णन किया है। आज विश्व में अनेक देश युद्ध की विभीषिका में फंसे हुए हैं। आवश्यकता है आपस में शांति-वार्ता करने की, क्योंकि शांति और प्रेम ही शाश्वत हैं। नरसंहार से कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। अंत में बस एक सूनापन और अवसाद ही प्राप्त होता है। युद्ध के पश्चात प्रेम की शीतल छांव में ही मनुष्य शांति पाता है। प्रेम ही महत्वपूर्ण है क्योंकि युद्ध और नरसंहार की विभीषिका के बाद प्रेम की शरण में मनुष्य को आना पड़ता है, तब ऐसे में नरसंहार का, युद्ध का क्या औचित्य है?

प्रेम ही सर्वोपरि है।

पूर्व प्राचार्य,
रामगढ़ महाविद्यालय,
रामगढ़ कैंट, झारखंड।

हिमाचल प्रदेश के जनसमुदाय में देवतंत्र की भूमिका

-डॉ. भवानी सिंह

1. देवतन्त्र का परिचय

हिमाचल प्रदेश पश्चिमी हिमालय की गोद में बसा, नैसर्गिक वातावरण से ओत-प्रोत एक सुन्दर पहाड़ी प्रदेश है। प्राचीन काल से प्राकृतिक नेमतों यथा वन, पेड़-पौधों, सरिताओं, झरनों, हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं, फल-फूलों से लदे वृक्षों इत्यादि से सुशोभित, स्वच्छ एवं शांत वातावरण के कारण मानवीय शक्तियों का क्रीड़ा स्थल रहा है। यह प्रदेश महात्माओं, महाऋषियों एवम् देवताओं की तपोभूमि रहा है। यहां अनेक महान आत्माओं ने कठोर साधना करके देवत्व को प्राप्त किया है। मन की शांति, जीवनयापन के लिए सुख-समृद्धि तथा शक्तियों को प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े यज्ञों महायज्ञों एवं उत्सवों के आयोजन की परम्परा भी प्राचीन हिमाचल हिमालय की गोद से आरम्भ हुई है जिसकी परम्परा आज भी यथावत है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार पश्चिमी हिमालय के वर्तमान जिले-शिमला, कुल्लू, सिरमौर तथा मण्डी के प्राकृक्तिक व रमणीय स्थल महाऋषि जमदाग्नि व महाऋषि परशुराम के तपोस्थल रहे। इन स्थानों पर उन्होंने कई वर्षों तक कठोर तपस्या की। देवी-देवताओं एवं ऋषि मुनियों की तपोस्थली होने के कारण विष्व में इस प्रदेष को देवभूमि होने का गौरव प्राप्त है। अत: यहाँ के जनमानस का समग्र जीवन देव-आस्थाओं एवं देवतन्त्र पर आधारित है। ऋषि मुनियों ने जहां-जहां भी तप किया वहीं पर उनके जन-जीवन से प्रभावित होकर आदिमानव ने उसको अपना निवास स्थान बनाया तथा उन आत्माओं को देवी-देवता का रूप देकर मन्दिर में उनकी कुल देवता व इष्ट देवता के रूप में स्थापना की। उसी समय से उनकी पूजा-अर्चना भी की जाने लगी जिसकी परम्परा आज भी कायम है। यहां सहस्रों देवी-देवताओं के प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं। उनके मानवीय जीवन-मूल्यों एवं आदशों पर लोगों की अटूट आस्था है और इनके जीवन का आरम्भ व अन्त देवतन्त्र से जुड़ा हुआ है। इसलिए नि:सन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल से मानव के जीवन पर देवसंस्कृति व देवतन्त्र का प्रभाव रहा है।

1.1 देवतन्त्र की भूमिका

प्राचीन समय में मानव समुदाय के पास जब कोई भी सरकारी तन्त्र व लोकतन्त्र नहीं होता था तो उस समय लोगों का जीवनयापन केवल देवताओं के तन्त्र से ही चलता था। शनै: शनै: राजाओं का राज आया परन्तु देवतन्त्र तब भी प्रभावी रहा। अपनी प्रजा की सुरक्षा व सुख समृद्धि के लिए हमेशा राजा देवी-देवता की शरण में जाकर प्रार्थना करते थे। उनके द्वारा बनाये गये नियम व निर्देश का पालन करके राजा अपनी प्रजा पर शासन चलाते थे। इसलिए अधिकतर देवी-देवताओं के मन्दिरों के निर्माण विभिन्न राजाओं द्वारा ही किए गए। इसका स्पष्ट प्रमाण यहां की लोककथाओं एवं लोकगाथाओं में आज भी मिलता है। राजाओं का राज भी समाप्त हुआ उसके बाद आया लोकतन्त्र परन्तु देवतन्त्र फिर भी समाप्त नहीं हुआ। उसका प्रभाव आज भी कायम है। यद्यपि आधुनिक समय विज्ञान का है तथापि लोगों की देवी-देवताओं पर आज भी अटूट आस्था है। ग्रामीण परिवेश में, जहां आधुनिक मानव सामाजिक वाद-विवाद को लेकर सबसे पहले न्यायालय नहीं अपितु देवताओं की शरण में जाता है तथा देवताओं द्वारा सुनाए गए न्याय पर उसका अट्ट विश्वास रहता है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि जिस वाद-विवाद को न्यायालय भी नहीं सुलझा पाये उसको सुलझाने में देवतन्त्र की अहम भूमिका रही है। इसलिए आज के जनमानस पर देवतन्त्र का कितना प्रभाव पड़ रहा है, इस पर अभी गहन शोध करने की आवश्यकता है। विशेषकर महाभारतकालीन सभ्यता से यहां का जनजीवन प्रभावित है। यहां की सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था काफी सरल तथा धार्मिक रूढ़ियों से युक्त है। भौगोलिक दुर्गमता के कारण किसी भी शासक का नियन्त्रण सहज न होने के कारण इस जनपद के समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व प्रशासन से अधिक देवताओं पर रहा है। अधिकतर लोग आपसी झगड़ों या मतभेदों का निपटारा देवताओं से ही करवाते हैं। यहां पर देवता अव्यवस्था फैलाने तथा अन्याय करने वाले को दण्ड देने में भी पूर्णत: सक्षम हैं। कुछ दशक पूर्व तक देवता तथा देवतन्त्र के बिना यहां के समाज की परिकल्पना करना भी सम्भव नहीं था परन्तु धीरे-धीरे इसमें बदलाव आ रहा है।

2. हिमाचल प्रदेश के प्रमुख देवी-देवता

हिमाचल प्रदेश के विभिल क्षेत्रों में प्रमुख देखी माँ दुर्गा (हाटेश्वरी) हा माता (तारक), माँ भीमा काली (मगहन, रामपुर) तारादेवी (जिला शिमला), मां ज्याला जी (जिला कांगड़ा), मां चामुण्डा (जिला कांगड़ा), मां बजेश्वरी (जिला कांगड़ा). बगलामुखी (जिला कांगड़ा), मां नैना देवी (जिला बिलासपुर), मां चिन्तपूर्णी (जिला कना। अधिक प्रसिद्ध हैं। परन्तु काली मां को हर गांव में पूजा जाता है। इन मन्दिरों में हिमाचल प्रदेश के अतिरिक्त के लोग भी पूजा अर्चना के लिए आते रहते हैं। प्रत्येक गाँव व परगनों में कई स्थानीय देवताओं को पूजा जाता है जिनमें प्रमुख हैं- देवता महेश्वर, देवता बकरालू, देवता परशुराम, देवता नाग, देवता सहदेव, देवता कण्डराणा, देवता दौलू, देवता रूद्धड़, देवता गोलीनाग, देवता नरैणु, देवता बमारु, देवता लांकड़ा बौर, देवता महासु, देवता जाख, देवता बिजट, देवता बौन्दा, देवता इम, देवता शिकडू, देवता खड़ाहण, देवता शालेश्वर, देवता शिरगुल आदि।

बिजेश्वर-बिज़ट तथा चूड़ेश्वर शिरगुल देवता का देव साम्राज्य हिमाचल के जिलें शिमला और सिरमौर में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यहां के जनपदों में इनकी बहुत मान्यता है। इनका प्रभाव उत्तरांचल के साथ लगते पर्वतीय भू-भाग में भी व्याप्त है। शिरगुल का निवास स्थान चूड़धार माना जाता है तथा बिज्जट देवता का निवास स्थान सराहां, तहसील चौपाल, जिला शिमला में स्थित है। चूड़धार एक पवित्र दर्शनीय स्थल है जहां पर वर्ष भर चूड़ेश्वर के दर्शन हेतु लाखों श्रद्धालु यात्रा करते हैं। बिजट महाराज सराहाँ में भी श्रद्धालुओं का आना-जाना वर्ष भर लगा रहता है। शिरगुल तथा बिजेश्वर का देवतन्त्र सम्पूर्ण जिला सिरमौर और शिमला के क्षेत्रों में प्रसिद्ध है। लाखों लोगों की इन दोनों देवताओं पर गहरी आस्था है।

3. लोक जीवन में देवतंत्र व्यवस्था एवं प्रभाव

सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्राकृतिक शक्तियों के आगे मानव नतमस्तक होता रहा है। हिमाचल प्रदेश की दिव्य भूमि पर वैदिक ऋषि-मुनियों से लेकर अनेक महात्मा विभिन्न स्थलों पर तपस्या में लीन रहे हैं और उनमें से अधिकांश कालान्तर में ग्राम-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठापित हुए जिनका प्रभाव आज भी यहां के जनमानस पर स्पष्ट रूपेण देखा जा सकता है। ग्राम देवताओं के अस्तित्व को नकारकर प्रदेष की संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रदेश में भी कई देवी-देवताओं को माना व पूजा जाता है तथा प्रत्येक गांव में देवी-देवताओं को पूजने की प्रमुख मान्यता प्राचीन समय से चली आ रही है। इसलिए यहां का जनमानस पूरी तरह से देवतन्त्र से प्रभावित है।

3.1 सामाजिक व्यवस्था एवं प्रभाव

हिमाचल की लोक संस्कृति में यहां के लोक जीवन में देव तंत्र में सामाजिक व्यवस्था का अत्यधिक महत्व है। जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों को समाज में प्रचलित देव प्रथा द्वारा मनाया जाता है। पुत्र के जन्म पर सम्बंधित घर से तीन या पांच व्यक्ति उसके ननिहाल जाकर वहां की स्थानीय जागा (ठाहारी देवी स्थान) पर जाकर बधाई के रुप में पैसे व दूवा (एक विशेष प्रकार का लघु हरा घास जिसका उपयोग पूजा में किया जाता है) चढ़ाते हैं। कई क्षेत्रों में बधाई के रूप में कुल देवता व देवी को बकरे की बलि चढ़ाने की प्रथा भी प्रचलित है। तत्पश्चात् मुंडन के समय बालक के बालों को भी पहली बार देव स्थल पर ही काटा जाता है। विवाह के अवसर पर भी देवी देवताओं की अहम भूमिका रहती है। विवाह का पहला निमंत्रण स्थानीय कुल देवी व देवता को दिया जाता है। तत्पश्चात् विवाह के समय विभिन्न पूजा-पाठ में सर्वप्रथम देवी देवता को ही पूजा जाता है। विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् वर-वधु सर्वप्रथम अपने-अपने स्थानीय देवता का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। बारात प्रस्थान के समय जब भी मार्ग में किसी भी देवी-देवता के स्थान आते हैं, तो प्राचीन समय में वहां पर बकरों की बलि दी जाती थी, परन्तु वर्तमान में उनके स्थान पर नारियल की गरी व रुपए-पैसे की भेंट चढ़ाई जाती है। मुत्यु होने पर यदि मृतक व्यक्ति का किसी भी कार्यकर्ता के रूप में देवता से सम्बन्ध होता है, तो उसके दाह-संस्कार का प्रबन्ध वहां के स्थानीय देवताओं के दिशा निर्देश से होता है। तत्पश्चात् मृतक के घर में शुद्धि करने के बाद कई क्षेत्रों में वहां के देवी-देवता शोक प्रकट करने मृतक के घर में जाते हैं।

किसी भी प्रकार के शुभ कार्य को आरम्भ करने से पूर्व यहां के समाज में देवी देवताओं की अनुमति लेना अनिवार्य समझा जाता है। देव कार्यों में, जैसे मंदिर निर्माण, देव संस्था के विभिन्न कार्यकर्ता, आपसी सहयोग एवं भाईचारे से देवता के कार्यों को सम्पन्न करवाते हैं जिसे श्रमदान कहा जाता है। मंदिर निर्माण की सारी सामग्री लकड़ी पत्थर आदि को ढोने के लिए किसी भी मजदूर की आवश्यकता नहीं होती बल्कि गांव के सभी लोग एकत्रित होकर इस कार्य को पूरा करते है। मंदिर में सूतक का परहेज 13 दिन तक होता है। जिस घर मे सूतक पातक होता है उस घर में देवता का कोई कार्य नहीं होता और न ही उस

घर के लोग तब तक मंदिर जा सकते हैं जब तक कि उस घर में शुद्धि-कार्य न हो जाए। यहां के ग्रामीण समाज में विभिन्न जातीय वर्ग में काम देवताओं द्वारा बांटा जाता है जिसमें ब्राह्मणों को देवी-देवताओं की पूजा-पाठ तथा ग्रामीण समुदाय में विभिन्न अनुष्ठान, शुभ कार्यों तथा नवग्रहों एवं शान्ति स्थापित करने के लिए कार्य करना पड़ता है। राजपूतों को देवता के विभिन्न कार्यों तथा देव प्रशासन आदि के कार्यों को सौंपा जाता है जो मोतविन, भंडारी, गुर और अलबंदी आदि कारिंदे के नाम से जाने जाते हैं। तीसरे वर्ग में बढ़ई और बजंतरी आते हैं। देव समाज में बढ़ई को देव मंदिर बनाने के कार्य के अतिरिक्त, देवता की पालकी तथा घर बनाने आदि के कार्यों को सौंपा जाता है। बजंतरी को देवताओं की नित्य पूजा एवं देव यात्रा में तथा गांव में शादी-विवाह एवं अन्य शुभ कार्यों में ढोल-नगाड़ों आदि बजाने का कार्य करना होता है। सबसे निम्न जाति को देव समाज में विभित्र अनुष्ठानों के समय बाहरी कार्यों का काम सौंपा जाता है जिसमें लकड़ी, वस्तुओं को उठाने, ढोल नगाड़े उठाने आदि का कार्य करवाया जाता है। इस प्रकार सभी कार्य करने वालों को कई प्रकार की वित्तीय एवं खाद्य सहायता दी जाती है। फसल के रुप में भी हर वर्ष नई फसल को प्राप्त करने से पहले सर्वप्रथम देवताओं की पूजा तथा फसल का कुछ अंश देवताओं के मंदिर में चढ़ाया जाता है। कई प्रकार की मन्नत पूरी होने के पश्चात् मंदिरों में सोने-चांदी के प्रतीकों तथा बकरों की बलि देने की प्रथा आज भी विद्यमान है।

3.2 सांस्कृतिक व्यवस्था एवं प्रभाव

प्राचीन काल से आज तक देव संस्कृति यहां के लोक जीवन में बहुत ही समृद्ध एवं प्रसिद्ध है। मनोरंजन के रुप में भी यहां के लोकजीवन में देव उत्सवों का विशेष योगदान रहा है। विभिन्न रीति-रिवाज, त्यौहार एवं मेले देवताओं के नाम से आज भी यहां जन समाज के द्वारा मनाए जा रहे है जिनमें बड़े-बड़े विभिन्न मेले स्थानीय देवी-देवता के नाम से बड़ी धूमधाम से मनाए जाते हैं जिनमें विभिन्न वर्गों के लोग शिक्षित एवं अशिक्षित, हजारों की संख्या में भाग लेते हैं। देवताओं द्वारा नाचने गाने की प्रथा प्रचलित है जिसमें देवताओं के नृत्य के साथ-साथ यहां का लोक समूह भी हर्ष एवं उल्लास के साथ नाचता एवं झूमता है। आज भी देवताओं के नाम से ऐसे विभिन्न मेले होते हैं जिसमें देवताओं की रथ यात्रा दैवी शक्तियों का प्रदर्शन, जैसे देवताओं की गूरु द्वारा अग्नि में कूदना, अपने गालों में लोहे की सलाखों को चुभाना आदि यहां की देव संस्कृति के जीवंत उदारण हैं।

हिमाचल प्रदेश का जनसमुदाय अधिकतर हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है। यहां के समाज में देवी देवताओं का अत्यधिक महत्व है तथा लोगों का स्थानीय देवतन्त्र पर अटूट विश्वास है। किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पहले देवी-देवताओं का नाम लेना तथा विधिपूर्वक उनकी पूजा-अर्चना करना आवश्यक समझा जाता है। इस जिले में प्रत्येक गांव तथा परगनों के अपने-अपने देवी-देवता हैं जिन्हें कुल, इष्ट देवी-देवता के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इनके प्राचीन मन्दिर वास्तुकला तथा हस्तशिल्प की दृष्टि से अनुपम हैं। देवी-देवताओं की उत्पत्ति, जिले में उनके आगमन तथा लोगों द्वारा उनकी मान्यता को लेकर कई लोकगाथाएं प्रचलित हैं।

प्राचीन समय में जब मनुष्य पृथ्वी पर विभिन्न घटनाओं के होने का कारण जानने में असमर्थ था, तो उसने इनमें दैवी शक्ति का अहसास किया। इसी विश्वास से ग्राम देवताओं तथा भूत-प्रेतों का आगमन जुड़ा है। देवी-देवताओं की प्रशंसा में स्तुतिगान तथा गाथाएं बनाई गई और उन्हें प्रसन्न करने के लिए देव मन्दिरों के परिसर में मेले, त्योहार एवं नृत्यों का भी आयोजन किया जाने लगा। विशेषकर नृत्यों में देवताओं से सम्बन्धित गाथाओं को लयबद्ध रूप से गाया जाता था। इसलिए धीरे-धीरे नृत्य-गान का कार्यक्रम जनमानस के लिए मनोरंजन का एक साधन बना। प्रस्तुत है प्रदेश में मनाए जाने वाले कुछ प्रमुख त्यौहार एवं महायज्ञों का निम्नवत् वर्णन -

3.2.1 साजो-त्यौहार

'साजो' त्योहार हिमाचल प्रदेश के कई जिलों के प्रत्येक परगने तथा गाँव में मनाया जाता है। इस पर्व का रहस्य यहाँ के स्थानीय देवी-देवताओं के साथ जुड़ा हुआ है। माघ महीने की संक्रान्ति के दिन 'साजो' त्योहार मनाया जाता है। इस त्योहार का सम्बन्ध कुल, इष्ट, देवी-देवताओं की विदाई से जुड़ा हुआ है। माघ संक्रान्ति के दिन गाँव में देवी-देवताओं की पालकी खोल दी जाती है और विश्वास किया जाता है कि ज़िले के देवी-देवता देवलोक चले गए हैं। शिमला कुल्लू मण्डी, सिरमौर और किन्नौर जनपद का विश्वास है कि प्रत्येक वर्ष इस पर्व के दिन सारे देवी देवता एक महीने के लिए देवलोक में होने जा रहे सम्मेलन में भाग लेने हेतु 'इन्द्रलोक' पहुँच जाते हैं तथा पृथ्वी पर रह रहे जीव जन्तुओं के भविष्य को लेकर आगामी वर्ष की योजना बनाई जाती है। देव लोक सम्मेलन के अन्त में

इन्द्रलोक में प्रत्येक अच्छी बुरी वस्तु का आबंटन प्रत्येक देवताओं के मध्य किया जाता है। प्रत्येक देवी देवता इन वस्तुओं को अपने साथ लाकर फाल्गुन माह की संक्रान्ति को पृथ्वी पर स्थापित अपने अपने मन्दिरों में पहुँचते हैं। इस दिन भी इस पर्व को प्रत्येक मन्दिर में स्थानीय देवी देवताओं की पूजा अर्चना के साथ मनाया जाता है। पूजा अर्चना के पश्चात् गाँव के लोग गुर तथा माली (जिस व्यक्ति में देवात्मा प्रवेश होकर लोगों से सीधा सवांद करता है) के माध्यम से देवताओं को जगाते हैं। गूर के रूप में देवता प्रकट हो जाते हैं तथा पूरे वर्ष के लिए कौन–सी घटना कब घटेगी, कौन सा कार्य कैसे होगा, आगामी एक वर्ष के लिए भविष्यवाणी भी करते हैं, जो कि पूरे वर्ष में सत्य सिद्ध होती हैं।

3.2.2 बकरीद का त्योहार

यूँ तो पहाड़ी जिलों में बकरीद का त्यौहार सभी गाँवों में मनाया जाता है, परन्तु जिला शिमला, किन्नौर और सिरमौर के जनपद में इसका अपना एक विशेष महत्व है। बकरीद का अर्थ है बकरे की बलि या बकरा काटना। यह पर्व मार्गशीर्ष के महीने में मनाया जाता है। कई गाँवों में यह त्यौहार 'टांणा', 'बांद', 'रीठ' आदि धार्मिक मान्यताओं से भी मनाया जाता है। इस त्योहार के पीछे कई धार्मिक मान्यताएं भी हैं। लोगों का कहना है कि प्रत्येक वर्ष के अन्त में अपने देवी–देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि के रूप में बकरे काटे जाते हैं तथा भोग के रूप में लोग माँस खाते हैं। प्राचीन समय में शिमला और किन्नौर जिले के प्रत्येक गाँव में बर्फ अधिक पड़ती थी, जिसके कारण सारा जन–जीवन प्रभावित हो जाता था तथा लोग अपने घरों से बाहर नहीं निकल पाते थे। उस समय यहाँ के लोगों के पास भेड़ बकरियाँ अधिक होती थीं। सर्दी के दो–तीन महीनों में बर्फ पड़ने के कारण खाद्य सामग्री आसानी से उपलब्ध नहीं होती थी तथा पौष्टिक आहार भी नहीं मिलता था। इसलिए प्राचीन समय से ही यहाँ के लोगों ने सर्दियों के महीने में पौष्टिक आहार तथा भोजन को प्राप्त करने के लिए भेड़–बकरियों का माँस खाना आरम्भ किया। तब से यह परम्परा आज तक बकरीद नामक त्योहार से मनाई जाती है। आज भी लोग मार्गशीर्ष के महीने में बकरे काटते हैं तथा उसके माँस को सुखाकर सर्दियों के शेष महीनों के लिए रखते हैं। शिमला जिले के लोग बकरीद पर्व को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं तथा इस पर्व के दिन नाते–रिश्तेदारों को भी आमन्त्रित किया जाता है और इनके लिए बकरे के माँस के विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोसे जाते हैं।

3.2.3 भंडा महायज्ञ

भेंडा महायज्ञ की परम्परा कहां से और कब आरम्भ हुई यह तथ्य बहुत ही रोचक है। यह महायज्ञ पौराणिक तथा वैदिक है। कहा जाता है कि भेंडा महायज्ञ की उत्पत्ति भंडासुर से हुई है और इस महायज्ञ की परम्परा का आरम्भ काव नामक स्थान तहसील करसोग, जिला मण्डी से हुई है। सबसे पहले भेंडा महायज्ञ यहीं मनाया गया था जिसके अवशेष आज भी कामाक्षा माता मन्दिर, काव में उपलब्ध हैं। काव के बाद ममेल, जिला मण्डी, निरथ, दत्तनगर, जिला शिमला में भेंडा महायज्ञ को मनाया गया था। इसके पश्चात् जिला कुल्लू के निरमंड में इस महायज्ञ को मनाया गया।

शिमला जिले में यह परम्परा कैसे पहुंची, यह भी एक रोचक तथ्य है। वृद्धजनों के अनुसार जब निरमंड में महायज्ञ हुआ था तो उस समय वहां पर भेंडे में प्रयोग किए जाने वाला रस्सा टूट गया था जिसका टूटा हुआ टुकड़ा मुराल पर्वत को पार करते हुए शिमला जिले के गांव नड़ला में बिजली की तरह गिरा। स्थानीय लोग इससे भयभीत हुए तथा उन्होंने अपने कुल देवता की आराधना की। नड़ला के देवता ने लोगों को सलाह दी कि यह रस्सा उनके गुरु परशुराम द्वारा रचाया गया भंडा महायज्ञ का है इसकी आराधना करना अति आवश्यक है। तभी से शिमला जिले के कुछ गांवों में भेंडा महायज्ञ को मनाए जाने की परम्परा आरम्भ हुई, जो कि आज तक निभाई जा रही है।

भेंडा महायज्ञ की तैयारियां एक वर्ष पूर्व आरम्भ ही जाती हैं। इस महायज्ञ का सबसे महत्वपूर्ण अवशेष रस्सी बेड़ा और हवन कुण्ड है। इसलिए वास्तविक रूप से इसके आयीजन की रूपरेखा तीन माह पूर्व आरम्भ हो जाती है। बेड़ा जिसकी इस महायज्ञ में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, यह एक विशेष जाति का व्यक्ति होता है। जिस गांव में इस महायज्ञ का आयोजन होता है वहां पर इस व्यक्ति को तीन माह पूर्व देवता के वाद्य यन्त्रों के साथ गांव में लाया जाता है। लोगों द्वारा किसी विशेष जगह (घासनी) से मूञ्ज नामक घास को काटकर लाया जाता है जिसकी रस्सी बनाई

जाती है। इसका प्रयोग बेड़ा व्यक्ति के लिए किया जाता है। इस रस्सी को बनाने का कार्य बेड़ा व्यक्ति स्वयं तीन माह तक करता है, जिसकी लम्बाई लगभग तीन सौ मीटर होती है। बेड़ा तथा उसके परिवार का पालन-पोषण देवता द्वारा किया जाता है।

भेंडा महायज्ञ के पूजन का शुभारम्भ हवन कुंड से होता है, जहां पर बेड़ा व्यक्ति को प्रतीकात्मक मानव बलि के रूप में चढ़ाया जाता है। मंत्रोच्चारण के साथ बेड़ा व्यक्ति को रस्से पर फिसलने के लिए तैयार किया जाता है। बेड़े द्वारा जो रस्सी तैयार की जाती है, उसे किसी स्वच्छ नाले में भिगोने के लिए रखा जाता है। बेड़े को नीचे फिसलने के लिए ऊँची जगह को चुना जाता है। इस ऊँची चोटी पर एक खम्भ गाड़ दिया जाता है तथा 300 मीटर नीचे तिरछी ढलान में दूसरा खम्बा गाड़ दिया जाता है। तत्पश्चात् पानी में रखी गई रस्सी को शुभमुहूर्त के साथ खुदों द्वारा (वीर राजपूत) ऊपर ऊंची चोटी पर लाया जाता है, जहाँ लकड़ी के खम्भे में उसका एक सिरा तथा गहरे नाले को पार करते हुए दूसरा सिरा निचले खम्भे में बांध दिया जाता है। ऊपर वाले सिरे पर एक अखरोट की लकड़ी द्वारा बनाई गई काठी (सीट) विशेष रूप से रस्सी पर बांधी जाती है। बेड़े को रस्सी पर बांधी गई काठी पर बिठाया जाता है जिसके दोनों तरफ संतुलन को बनाए रखने के लिए रेत से भरी बोरियां बंधी होती हैं। बेड़े के दोनों हाथों में सफेद कपड़े के झण्डे पकड़ाए जाते हैं और उसको रस्सी पर नीचे छोड़ दिया जाता है। दूसरी तरफ नीचे देवते बेड़े का इन्तजार करते हैं। हजारों लोग दम साधे हुए इस दृश्य को देखते हैं। बेड़े के नीचे पहुँचते ही लोग खुशी से चिल्ला पड़ते हैं। बेड़े के सुरक्षित पहुँचने पर उसे देवता की पालकी की बाजुओं पर बैठा कर लोग नृत्य करते हुए मन्दिर में पहुँचाया जाता है, जहाँ पर सभी लोग उसे पैसे देते हैं।

ऐसे सामाजिक एवं धार्मिक महायज्ञ अनेकता में एकता को निरूपित करते हैं। वर्तमान में भेंडा महायज्ञ के आयोजन का मुख्य उद्देष्य सम्पूर्ण जिले में सुख-शान्ति स्थापित करना तथा जिले को समृद्धिशाली बनाना होता है। भाईचारे एवं नाते-रिश्ते के मधुर मिलन को ऐसे महायज्ञ से बढ़ावा मिलता है। शिमला जिले में कई महायज्ञों का आयोजन किया जाता है। जैसे शांद, भड़ोजी प्रतिष्ठा, काली पूजन, भोज तथा भूण्डा महायज्ञ आदि। इन महायज्ञों में भेंडा महायज्ञ सबसे प्रसिद्ध है तथा यह इस जिले की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर है। भेंडा महायज्ञ को शिमला जिले के परगना समरकोट के गांव पुजारली, गांव बच्छून्छ, गांव कुई तथा छौआरा जिले के गांव नंडला, गांव कुलगांव में प्राचीन समय से ही मनाया जाता रहा है। वर्तमान में भेंडा महायज्ञ का आयोजन देवता बौन्द्रा की अगुआई में गांव बच्छून्छ, (2005) तहसील रोहडू, तत्पश्चात् गांव देवठी, तहसील रामपुर (2006) जिला शिमला में किया गया। इस महायज्ञ में देवता बकरालू, देवता परपुराम, देवता बैन्द्रा, देवता महेष्वर ने भाग लिया। इस महायज्ञ को देखने के लिए देश-प्रदेष से लाखों की तादाद में जनसमूह उमड़ा।

3.2.4 शाँत्त (शाँद) महायज्ञ

हिमाचल प्रदेश की सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था सरल तथा धार्मिक रुढ़ियों से मुक्त है। भौगोलिक परिवेश की दुर्गमता के कारण सरकार का नियन्त्रण सहज न होने से यहाँ के जनसमुदाय में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व प्रशासन से अधिक देवी-देवताओं पर रहा है। यहाँ के समाज के समस्त क्रिया कलाप देवताओं की परिधि में घूमते हैं। कोई भी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ व महायज्ञ का आयोजन देवी-देवताओं की अनुमति बिना सम्भव ही नहीं हो पाता है।

शाँत्त महायज्ञ का आयोजन भी स्थानीय देवी देवताओं की अनुमति से आरम्भ होता है। प्राकृक्तिक आपदा से बचने, अपने क्षेत्र में सुख शान्ति और समृद्धि के लिए जब शाँत महायज्ञ की प्रक्रिया का आरम्भ होता है तो सर्वप्रथम देवी-देवताओं के पुरोहितों द्वारा तीन माह पूर्व शुभ मुहूर्त निकाला जाता है। उसी दिन से इस महायज्ञ के सफल आयोजन हेतु साधन जुटाने शुरु कर दिए जाते हैं। लोग आपस में अपनी इच्छानुसार अनाज, तेल, घी एवं नकद राशि, जिसे स्थानीय बोली में फांट कहा जाता है, एकत्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त अतिथि सत्कार के लिए लोगों द्वारा अपने अपने घरों में खाद्य सामग्री, बिस्तरे एवं खड्डू-बकरे का प्रबन्ध ही पहले कर लिया जाता है। स्थानीय देवताओं की समिति द्वारा शाँत महायज्ञ के आयोजन से लगभग तीन माह पूर्व आसपास के सभी देवताओं व देवलुओं तथा खूँदों को औपचारिक रूप से शांत में भाग लेने के लिए निमन्त्रण भेजा जाता है। यज्ञ आरम्भ होने के सात दिन पूर्व फिर से आमन्त्रित देवी-देवताओं की यज्ञ में आने हेतु सहमति व असहमति ली जाती है। शुभ मुहूर्त के अनुसार शान्त

महायज्ञ का एक सप्ताह पूर्व ही शान्ति पाठ का जाप एवं हवन विधि-विधान के साथ शुरु हो जाता है जो कि लगभग तीन भाग में पूरा होता है-

शाँत्त महायज्ञ की प्रक्रिया का पहला भाग सगेड़ा कहलाता है, जिसमें शाँत्त के लिए आमन्त्रित किए गए अतिथि देवी-देवताओं तथा उनके साथ खूँद (राजपूत लोग) आदि का यज्ञ आयोजन स्थल पर आगमन होता है। स्थानीय देवता तथा समिति द्वारा इन अतिथियों का साज-बाज के साथ स्वागत किया जाता है। स्थानीय देवता तथा अतिथि देवी-देवताओं का काफी समय तक आपस में मिलन होता है। खुद राजपूत सैकड़ों का संख्या में पारम्परिक वेशभूषा में सजधज कर, सिर पर पगड़ी और उस पर कलगी, जंजीर, बहुमूल्य चोगा और हाथ में चाँदी की तलवार, खुखरी व बन्दूकों आदि को लिए हुए गाजे-बाजे के साथ नृत्य करते हैं। इस दृश्य को देखकर दर्शक भाव-विभोर हो जाते हैं। तत्पश्चात् इनके रहने व खाने-पीने का उचित प्रवन्ध आयोजकों द्वारा किया जाता है। दूसरी ओर देव-पण्डितों द्वारा चावल के आटे में विभिन्न रंग मिलाकर खुले प्रांगण में मण्डप बनाया जाता है, जहाँ पर आमन्त्रित देवी-देवताओं का शक्ति परीक्षण होता है। मण्डप के बीचों-बीच एक नारियल को रखा जाता है जिसको अपने कब्जे में लेने के लिए देवी-देवताओं में प्रतियोगिता होती है। जो देवता इसमें जीत जाता है उसके साथ आए हुए लोग हर्षोल्सास से झूम उठते हैं और आयोजक देवता की ओर से उसे विशेष भेंट दी जाती है।

शाँत्त महायज्ञ की दूसरी प्रक्रिया शिखफेर की है। दूसरे दिन मेजबान देवता अपने गाँव की तथा आयोजन स्थल के चारों ओर परिक्रमा करता है जिसे फेर कहा जाता है। इस फेर में पण्डितों द्वारा मन्त्रोच्चारण करके पूजा-पाठ किया जाता है। नाथ सम्प्रदाय के लोग भी शिंगी बजाकर अपनी हाजिरी देते हैं। फेर प्रक्रिया में हजारों लोगों के साथ देवता के गूर अपने गालों में तांबे व चांदी की सलाखों को चुभोकर दैविक शक्ति का प्रदर्षन करते हैं। परिक्रमा के दौरान विभिन्न स्थानों पर अनिष्ट की आशंका के दृष्टिगत दुष्ट आत्माओं के शमन हेतु भेड़, सुअर, मुर्गे तथा बकरों की बलि दी जाती है। इसके अतिरिक्त कद्दू, अखरोट व आटे को चारों दिशाओं में फेंका जाता है। फेर में पीछे-पीछे से लोग हजारों की संख्या में हाथों में पारम्परिक अस्त्र-शस्त्र पकड़े हुए तथा नृत्य करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं।

फेर पूजन के पश्चात् मन्दिर की छत पर शिखाफेर पूजन होता है जिसमें देवताओं के गूर व ब्राह्मणवर्ग देवता के नशाण सहित अन्य देवलु मन्त्रोच्चारण के साथ मन्दिर की छत की परिक्रमा करके पूजन करते हैं। शिखा पूजन में चारों दिशाओं के पहाड़ों में बसी कालियों का आह्वान किया जाता है। मन्दिर की शिखा पर बकरों की बलि भी दी जाती है। तत्पश्चात् चारों दिशाओं के नाम पर भी बलि दी जाती है। यह शिखा पूजन शाँत्त महायज्ञ का मुख्य पूजन होता है जिसमें क्षेत्र की शान्ति व सुख-समृद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है।

शाँत्त महायज्ञ का समापन तीसरे भाग 'उछड़-पाछड़' के साथ होता है। इस प्रक्रिया में भी तीसरे दिन फिर से मण्डल तैयार किया जाता है जिसमें देवताओं का शक्ति-परीक्षण होता है। मन्दिर के भीतर निरन्तर पूजा-अर्चना चलती रहती है जहां पर आम लोगों के लिए प्रवेश वर्जित होता है। मन्दिर के गर्भगृह में चल रहे हवनकुण्ड में पूर्ण आहुति डाली जाती है। तत्पश्चात् एक भेड़ व बकरे की बलि देते हुए अनिश्चित् काल के लिए विधि-विधान के अनुसार हवनकुण्ड को बन्द कर दिया जाता है। यह हवनकुण्ड तभी खुलता है जब भविष्य में इस जगह शांत महायज्ञ का पुनः आयोजन होगा। इस प्रकार सभी कार्य-कलापों के पष्चात् सभी देवी देवताओं के साथ आए हुए विभिन्न वर्गों के लोग आपस में मिलजुल कर ढोल नगाड़ों, रणसिगों, करनालों, कन्थाल, भाणे व शहनाइयों की स्वर ध्वनियों पर झूमते तथा पारम्परिक नृत्य करते हुए सबसे विदाई लेते हुए अपने घरों को प्रस्थान करते हैं। जातरों के समय देवताओं को सुन्दर गहनों से सजाया जाता है।

3.2.5 जागरा

हिमाचल प्रदेश के जिले शिमला का जागरा का त्योहार 'महासू' देवता के नाम से बड़ी धूम धाम से मनाया आता है। भादों मास के पत्थर चौथ के दिन शिमला व इसके आस-पास के गाँव में जागरा उत्सव का आयोजन किया जाता है। कहा जाता है कि जागरा इस जिला का सबसे प्राचीनतम त्यौहार है। एक किंवदन्ती के अनुसार जब-जब भी राम पर कोई मुसीबत पड़ी, तो उन्होंने शिव की आराधना की जिससे उनका संकट दूर हो गया। इस प्रकार श्रीराम ने कई स्थानों पर भगवान् शिव की मूर्तियाँ व शिवलिंग स्थापित किए उनमें से एक शिवलिंग महाशिव कहलाया, जो कि कालान्तर में महासू देवता के नाम से विख्यात हुआ। पत्थर चौथ के दिन शिमला जिले में स्थापित इस देवता की रात-भर स्तुति गाई जाती है तथा लोग जागरण करते हैं। यह जागरण शिमला जिले के कई गांवों में मनाया जाता है।

जागरा त्यौहार के दिन देव कार्यों से जुड़े सभी लोगों द्वारा व्रत रखा जाता है। महासू देवता के मन्दिर में पूजा-अर्चना करने के पश्चात् बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। सायंकाल चिड़ों की पूजा की जाती है। चुने गए बड़े चिड़े के समक्ष भी बकरे की बलि दी जाती है। तत्पश्चात् चिड़ों को प्रज्वलित किया जाता है। चिड़ों में अग्नि के प्रज्वलित होते ही वाद्य-यत्रों तथा ढोल-नगाड़ों की ध्वनियों के साथ बिरसू अर्थात् महासू देवता को लोकगाथा को गाया जाता है। महासू लोकगाथा के गायन के साथ लोग नृत्य करते हुए मन्दिर के खुले प्रांगण में चारों ओर परिक्रमा करते हैं। एक परिक्रमा के पूरे होते ही पूरे प्रांगण में अलग-अलग समूह में नाटियाँ (नृत्य) शुरु हो जाती हैं। इन नाटियों का क्रम पूरी रात भर चलता रहता है। रात होते ही गीत के साथ नृत्य एवं नाटियों का समापन हो जाता है और सभी लोग अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं।

3.3 प्राकृतिक आपदा प्रबंधन-व्यवस्था एवं प्रभाव

ग्रामीण समाज में किसी भी प्रकार के संकट को लेकर देवतंत्र द्वारा उसे नियंत्रित किया जाता है। विभिन्न प्रकार की प्राकृक्तिक आपदा जैसे ओलावृष्टि, अधिक बारिश, बाढ़, आगजनी, आंधी-तूफान, बादल फटना, सूखा आदि घटनाओं को नियंत्रित करने के लिए स्थानीय देवता के निर्देशानुसार पूजा-पाठ, यज्ञ महायज्ञ का आयोजन करके उस क्षेत्र से संकट टाल देते हैं। ऐसा यहां के लोगों का मानना है। इसके लिए यहां पर ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं में स्थापित काली-पूजन का विशेष महत्व रहता है। इस प्रकार के उदाहरण भी मिले हैं जहां देवताओं ने अपने दैवी शक्तियों द्वारा जिस क्षेत्र में अधिक सूखा पड़ता है, वहां बारिश लाना तथा विभिन्न प्रकार की प्राकृक्तिक घटनाओं से अपने-अपने गांव की सुरक्षा आदि में अहम भूमिका रहती है। इसमें स्वयं स्थानीय देवताओं द्वारा विभिन्न प्रकार के यज्ञों में कालियों का आह्वान करके उनका पूजन विभिन्न तंत्र-मंत्रों एवं टोटकों के द्वारा एवं बकरियों की बलि देकर किया जाता है। देवताओं को बलि चढ़ाने के बारे में लोगों का कहना है। कि इन्हें बलि नहीं चढ़ाई जाती बल्कि देवताओं के साथ सैकड़ों आसुरी शक्तियों एवं भूत-प्रेतों का होना माना जाता है तथा उन्हीं के नाम पर उनको प्रसन्न करने के लिए उनको बलि चढ़ाई जाती है ताकि संबंधित क्षेत्र उनके प्रभाव से मुक्त रह सके।

3.4 न्यायायिक व्यवस्था एवं प्रभाव

प्राचीन समय में जब मानवीय लोक जीवन के पास किसी भी प्रकार की वर्तमान जैसी न्यायायिक व्यवस्था उपलब्ध नहीं थी तो उस समय केवल देवतंत्र की न्यायायिक व्यवस्था ही अधिक प्रभावशाली थी। यह व्यवस्था आज भी हिमाचल प्रदेश के लोक जीवन में प्रचलित है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद का निपटारा, जो आज के उच्च न्यायालय तक में नहीं हो पाता, उसको सुलझाने में यहां के देवी देवता अधिक सक्षम दिखाई देते हैं। लोगों के घरेलू झगड़ों से लेकर जमीन-जायदाद सहित अन्य मामलों में कोई देवता के मन्दिर में जाकर किसी के विरुद्ध फरियाद करता है तो दूसरे व्यक्ति को देवदोष लगता है। देवदोष से छुटकारा पाने के लिए दोनों पक्षों में समझौता होना आवश्यक होता है। देवदोष से प्रभावित व्यक्ति को देवता से ही जानकारी हासिल होती है। दूसरे पक्ष के द्वारा देवदोष से मुक्ति पाना एवं समझौता करने की इच्छा स्वरुप खाडड्डु एवं बकरे का प्रबन्ध करना होता है। दोषी व्यक्ति द्वारा बाररिंगा अर्थात खड्डु, बकरे के ऊपर से बाजू घुमाकर उस पर लोक मंत्रों से पानी छिड़ककर देवदोष से मुक्त किये जाने का संकेत दिया जाता है। तत्पश्चात् बकरे को देवता को सर्मपित किया जाता है।
जमीन के बंटवारे को लेकर आज भी मानवीय समाज में विभिन्न प्रकार के लड़ाई-झगड़े दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं जिसको लेकर खून-खराबा अधिक बढ़ता जा रहा है। पुलिस व्यवस्था का प्रभाव तथा निम्न न्यायालय से लेकर उच्च न्यायालय तक कई वर्षों से लंबित ऐसे मामलों का निपटारा आसानी से नहीं हो पा रहा है, लेकिन देवतंत्र में इन सभी मामलों को सुलझाने के लिए कई उदाहरण सामने आ चुके हैं। हिमाचल प्रदेश के शिमला जिले में कई ऐसे देवता है जो अपने देवतंत्र से जमीन के झगड़ों को निपटाने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। जमीन का बंटवारा या तो देवता की पालकी जमीन पर स्वयं परिक्रमा करके उसकी पैमाइश करती है या देवता का गुर, जिसके अंदर देवता की शक्ति पैदा होती है, खेतों में रेखाएं खींच खींच कर जमीन का बंटवारा करके दोनों पक्षों को अपना फैसला सुनाते हैं। इस प्रक्रिया से दोनों पक्ष संतुष्ट दिखाई देते हैं। विभिन्न प्रकार के रुपए-पैसों को लेकर झगड़ों का निपटारा भी देवी-देवता द्वारा अपनी दैवी शक्तियों के द्वारा असत्य एवं सत्य का आंकलन करके करते हैं। देवतंत्र की न्यायायिक प्रक्रिया में दंड देने की प्रथा भी प्रचलित है। दोषी व्यक्तियों पर दंड के रूप में रुपए पैसों का नजराना बकरों की बलि, सोने-चांदी के प्रतीक चिह्न, छुआ छूत तथा गांव से बाहर निकालने की विधि भी उपल्बध हैं। जो लोग इन सभी देव न्यायिक विधियों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें देवताओं का श्राप भी लगता है। धीरे-धीरे उसका प्रभाव शुरु हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण ग्रामीण समाज में आज भी उपलब्ध हैं।

3.5 स्वास्थ्य व्यवस्था एवं प्रभाव

ग्रामीण लोक जीवन में कई जगह विभिन्न व्याधियों का उपचार भी देवी-देवता के द्वारा किया जाता है। जब कोई भी व्यक्ति बीमार होता है तो वह डाक्टर के पास न जाकर देवता के माली (गूर) के पास जाकर अपनी बीमारी का निदान पूछता है। कई जगह यह भी प्रथा प्रचलित है कि अगर देवता का माली यह कहे कि तुझे कोई देवदोष नहीं हैं तो तुम डाक्टर के पास अपनी बीमारी का इलाज करवा लो, तो वह व्यक्ति ऐसा ही करता है। किसी व्यक्ति को अगर देवदोष हो तो माली या (गूर) के द्वारा उस व्यक्ति का इलाज किया जाता है। उसे बार-बार अपने देव स्थान पर देवता के घूर द्वारा बुलाया जाता है और मंत्रों और पूजा-पाठ के द्वारा व बकरे की बलि देकर उसका इलाज करवाया जाता है। जिस व्यक्ति को देव दोष लगा होता है उस सूतक व पातक का परहेज देवता द्वारा रखा जाता है। उस व्यक्ति को किसी दूसरे घर का खाना भी नहीं दिया जाता है। अगर कोई व्यक्ति देवता द्वारा बताए गए परहेज नहीं करता है तो उसके इलाज में कोई न कोई बाधा उत्पन्न हो जाती है। यदि किसी दम्पति के संतान नहीं होती तो वह डाक्टरों से अपनी जांच करवाते हैं। जांच करवाने से जब उन दोनों में कोई बीमारी नहीं निकलती तो वह डाक्टरी इलाज को छोड़कर देवी-देवताओं की शरण में जाते हैं।

4. देवतंत्र में बखाण परंपरा

बखाण से तात्पर्य है भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान। इस प्रदेश में भविष्य में घटने वाली घटनाओं की जानकारी लोक देवताओं के द्वारा लोगों की दी जाती है। इस क्षेत्र में लोगों को ऐसा विश्वास है। सात माघ को सभी देवी-देवता स्वर्ग को जाते है और 15 माघ को वापिस लौटते हैं। इन सात दिनों में देव मंदिर में पूजा अर्चना नहीं होती है। सात माघ को सभी लोग अपने चूल्हों की लिपाई-पुताई करके मीठे पकवान बनाते हैं। रात्रि को सोने से पूर्व चूल्हे पर धूप जलाई जाती है क्योंकि विश्वास है कि देवताओं के साथ चूल्हे यानि अग्नि की शक्ति भी आती है। 15 माघ को कुछ बड़े देवताओं को छोड़कर शेष सभी वापस लौट जाते हैं और वहां से जो कुछ लेकर आते हैं उसके बारे में लोगों को बतातें है। माध संक्रांति को अन्य देवता भी लौट आते हैं। उस दिन सब ग्रामवासी धूप जलाकर मंदिर में पूजा अर्चना करते हैं। गांव तथा परगनों के विभिन्न ग्राम देवता अपने गुरु के माध्यम से (देव प्रवक्ता) स्थानीय लोगों को अपनी स्वर्ग यात्रा में अवगत कराते हैं, जिसे बखाण बोलना कहते है।

इस बखाण परंपरा में बताया जाता है कि स्वर्ग लीक में इंद की सभा में किस देवता को फटकार या डांट मिली, किस देवता को शाबाशी। सभी देवताओं के बारे में बताया जाता है कि कौन क्या जीतकर लाया है। जैसे कोई देवता भारा या पाची का भार लेकर आता है तो इसका अर्थ है कि उसे शान्त महायज्ञ करना होगा। यदि मटर के दाने की मुट्ठी भर कर लाया है तो ओले पड़ेंगे। किसी के लिए कहा जाता है कि देवता व्याधियां, बीमारियां लेकर आया है, किसी देवता के बारे में यह कहा कि उस वर्ष उस देवता के क्षेत्र में फसल नहीं होगी। बखाण में केवल अनिष्ट होने के बारे में ही नहीं बताया जाता है अपितु उनसे निपटने के उपाय भी बताए जाते हैं जैसे कल्लां की मुठ जिसका अर्थ है ओले से फसल की हानि, तो इसका उपाय काली का पूजन तथा बीमारियों से बचने का उपाय ग्रहों का शांति पूजन इस तरह से अनकों उपाय बताये जाते है। इसके साथ ही राजनीतिक उथल-पुथल के संकेत भी इन बखाणों में मिलते हैं। स्थानीय लोगों को देवता की इन भविष्यवाणियों पर इतना अधिक विश्वास है ये महज ही उनके अनुसार अपनी आगे की कार्ययोजनाएं तय कर लेते हैं।

निष्कर्ष :

आधुनिक युग विज्ञान का युग है और हमारी संस्कृति तथा समाज, पाश्चात्य संस्कृति से अवश्य प्रभावित हुआ है। लेकिन ग्रामीण समाज में आज भी देव-संस्कृति जिन्दा है। हमारी प्राचीन संस्कृति को बचाने में यदि किसी तन्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है तो उसमें देवतन्त्र सबसे आगे है। सांस्कृतिक धरोहरें मेले, उत्सव, यज्ञ, महायज्ञों आदि ने हमारी सामाजिक एकता को बढ़ावा दिया है। आज के युग में मानव विघटन होता जा रहा है परन्तु देवी-देवताओं द्वारा आयोजित पारम्पारिक उत्सव के अवसर पर सभी एकत्रित हो जाते हैं। आज भी सरकारी तन्त्र व लोकतन्त्र से अधिक विश्वास ग्रामीण जनसमुदाय का देवतन्त्र पर है। कई ऐसे साक्ष्य भी सामने आये हैं कि जहां सामाजिक वाद-विवाद को सुलझाने में न्यायालय से भी लोग संतुष्ट नहीं हो पाए, उन्होंने देवता शरण को लेकर उनसे न्याय मांगा तथा देवता द्वारा सुनाये गए न्याय से वह हमेशा संतुष्ट भी दिखे। इसलिए मानवीय जीवन आज भी देवतन्त्र से प्रभावित है। इसलिए सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इस पर शोध करना अधिक महत्वपूर्ण है। यह इस दृष्टि से भी अहम है कि क्या देवतन्त्र सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं या केवल जनमानस मनोवैज्ञानिक कारणों से इसको अपनाता है।

बिजट महाराज व चूड़ेश्वर महाराज के निवास स्थान दर्शनीय स्थल हैं। यह स्थल रमणीय व नैसर्गिक सुन्दरता से ओत-प्रोत हैं। इसलिए यह देव स्थल पर्यटन की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है। यह तो सम्पूर्ण शोध के पश्चात् ही बताया जा सकेगा कि ये देव-स्थल

किस-किस दृष्टि से विकसित हो सकते हैं। विरासत में मिली ऐसी धरोहरों को संरक्षण प्रदान करना अति आवश्यक है। इसलिए इस पर निरन्तर शोध करने की आवश्यकता है ताकि युवा पीढ़ी इससे अनभिज्ञ न रहे तथा अपनी प्राचीन संस्कृति को बचाने में आगे आए। पर्यावरण प्रबन्धन में देवता की आज भी महत्वपूर्ण भूमिका है। गांव में आज भी ऐसे वन क्षेत्र है जिसको देवता की अनुमति के बगैर एक टहनी भी काटना मुश्किल है। इस प्रकार से वनों को संरक्षण मिल रहा है। गांव में बावड़ियों और चश्मों का पानी देवताओं की पूजा में प्रयोग किया जाता है इसलिए वहां के आस-पास का वातावरण हमेशा साफ-सुधरा रहता है। इन सब बातों से देवतन्त्र का महत्व स्वयं ही परिलक्षित होता है।

अतः आज आवश्यकता है देव मन्दिरों और धार्मिक दर्शनीय देवस्थलों का आडियो वीडियो दस्तावेज बनाकर उसे सरकार के ध्यान में लाना अपेक्षित है ताकि पहाड़ी प्रदेश को देव-पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जा सके जो राज्य सरकार के राजस्व के साधन भी बन सकते हैं। ग्रामीण परिवेश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास पर्यावरण प्रबन्ध तथा देव-वन के कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध आदि पर देवताओं की प्रमुख भूमिका रहती है। गांव में अपराध, अनुशासन, आपसी, परस्पर सहयोग तथा भाईचारे को कायम रखने में देवतन्त्र का पूर्ण नियन्त्रण है। यज्ञ-महाराज तथा मेले एवं त्योहारों का आयोजन देवताओं द्वारा ही होता है। उनके आयोजन के बहाने सरकार व प्रशासन मूलभूत सुविधाओं को उपलब्ध करवाने हेतु सतत् प्रयासरत रहते हैं जिससे क्षेत्र का विकास निरन्तर होता रहता है।

सहायक संदर्भ :

1. सुदर्शन वशिष्ठ, हिमाचल देव संस्कृति (दिल्ली: पुष्पांजलि प्रकाषन, 2006)
2. उमा प्रसाद मुकर्जी, मणिमहेश (शिमला: हिमाचल कला संस्कृक्ति भाषा अकादमी, 2002)
3. नीलम अग्रवाल, चारों धाम की यात्रा (दिल्ली: जीवन ज्योति प्रकाशन, 1995)
4. स्वराज अग्रवाल, भारत के पूजा स्थल, (दिल्ली: प्रेम प्रकाशन मन्दिर 3092 बल्लीमारान, 1997)
5. शान्ति कुमार स्याल, देवमाला का हिमाचल, (दिल्ली: सन्मार्ग प्रकाशन, 1997)
6. अमरदेव आंगिरस, देवता को उत्पति एवं लोक विश्वास (सांस्कृतिक निबन्ध संकलन) (सोलन: पदम मुद्रणालय, दि माल अकी, 2005)
7. डॉ0 कुसुम जायसवाल, उत्तर भारत की प्राचीन हिन्दू देवी मूर्तियां (दिल्ली: आत्माराम एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, 1992)

हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
समर हिल, शिमला-171005

कबीर वाणी : आज के सन्दर्भ में

-डॉ. देवेन्द्र कुमार

मध्ययुगीन संत काव्य परम्परा के सर्वश्रेष्ठ और युगप्रवर्तक संत कवि तथा समाज सुधारक कबीर का जन्म सन् 1398 ई. को काशी में हुआ। उस समय भारत पर लोदी वंश का शासन था। सिकंदर लोदी के शासन में हिन्दू समाज की हालत बहुत अच्छी नहीं थी क्योंकि सिकंदर लोदी की अदूरदर्शिता तथा अन्यायप्रियता के कारण प्रत्येक दिन लगभग 150 हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया जाता था। शासक वर्ग के भोग-विलासपूर्ण जीवन के कारण भारतीय समाज में दुर्व्यवस्था फैली हुई थी। वर्ण-व्यवस्था ने समाज की नींव हिला कर रखी दी थी। शूद्र वर्ण की सब ओर से उपेक्षा की जाती थी। स्वार्थी, चापलूस और धन-लोलुप व्यक्तियों ने निम्नवर्गीय जनता के प्रति उच्च्च वर्ग के लोगों को खूब भड़काया। वर्णाश्रम-व्यवस्था के नाम पर हिन्दू समाज में विषमता, अज्ञान, भेद-भाव, अन्धविश्वास आदि का बोलबाला था। घमण्ड, मिथ्याभिमान, दुराचार, पाखण्ड, पारस्परिक अविश्वास, विषय-वासना, लोभ, मोह, मद आदि मानसिक और नैतिक विकारों के कारण समाज पतन की ओर जा रहा था। समाज में लोग अपना मानव-चरित्र खोते जा रहे थे। ऐसे में कबीर साहिब ने तत्कालीन समाज के लोगों में चेतना पैदा करने वाली ओजस्विनी वाणी से मानव-चरित्र निर्माण की प्रेरणा दी और सामाजिक चरित्र की गिरावटों पर प्रहार किया।

आज के पूँजीवादी युग में चाहे उस युग जैसी परिस्थितियां नहीं हैं फिर भी आज का मनुष्य अपनी चारित्रिक विशेषताएं खोता जा रहा है। इन चारित्रिक गिरावटों की तरफ कबीर साहिब ने आज से लगभग छः शतक पूर्व ध्यान दिलाया था। उनकी कविता आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उस समय में थी। अंतर केवल इतना है कि उस युग की सामंती व्यवस्था ने अपना रूप बदल कर पूंजीवादी व्यवस्था का बना लिया है। दोनों रूपों में गरीब जनता का शोषण होता है। गरीब जनता मात्र मजदूरी और चाकरी करके इनके कोष भर रही है और खुद ही इन के शोषण का शिकार हो रही है। उच्च्च वर्ग के शोषण करने वाले लोगों को कबीर साहिब ने प्रताड़ित करते हुए कहा :

करें बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोय।
रोपै पेड़ बबूल का, आम कहां ते होय ॥

इन चारित्रिक गिरावटों के कारण पूंजीवादी समाज भी सामंती व्यवस्था की तरह पतन का शिकार हो जाएगा। स्वार्थी लोग शासकों और उच्च्च वर्ग के लोगों की प्रशंसा में झूठे गीत गाकर अपने हितों की सुरक्षा देखते हैं। ऐसे में सर्वत्र झूठ का बोलबाला होता है। सत्य का प्रचलन कम होता जा रहा है। कबीर ने दृढ़ता के साथ सत्य को ईश्वर से जोड़ते हुए कहा था:

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप ॥

सच बोलना सबसे बड़ी तपस्या है। कबीर जी के अनुसार सत्य बोलने वालों के हृदय में ईश्वर बसता है। झूठ के प्रचलन का कारण सत्य पर से उठता जा रहा विश्वास है। सत्य पर कोई विश्वास नहीं करता, झूठ पर तुरंत विश्वास कर लिया जाता है, क्योंकि इसमें स्वार्थ होता है। आज सत्य पर अविश्वास करके झूठ पर विश्वास किया जा रहा है। ठीक उसी तरह जैसे अमृत तुल्य दूध को गली-गली घूम कर बेचना पड़ता है और विष तुल्य शराब दुकान पर बैठे-बैठे बिक जाती है। यह चारित्रिक गिरावट ही तो है। कबीर जी लोगों को सत्य की राह पर लाने के लिए ईश्वर का भय दिखाते हुए कहते हैं:

साहेब के दरबार में, सांचे को सिर पाँव।
झूठ तमाचा खाएगा, क्या रंक क्या राव॥

चारित्रिक पतन का एक और कारण समाज के लोगों में करनी और कथनी का अंतर है। कबीर दास ने इस ओर इशारा करते हुए कहा था:

कहन्ता तो बहुतै मिले, गहन्ता मिला न कोय।
सो कहन्ता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय ॥

परन्तु कथनी-करनी का अंतर न तब मिट पाया और न आज ही। आज भी पंजीवादी आर्थिक व्यवस्था में यह विभिन्न पार्टियों का एक राजनीतिक अस्त्र बन गया है। समाज में वहीं मनुष्य आदर पाता है जो स्वार्थ सिद्धि करना जानता है। स्वार्थ सामाजिक विकारों को जन्म देता है। कबीर जी ने स्वार्थ की सीमाओं पर अंकुश लगाने का प्रयास किया ताकि सामाजिक गणों के विकास में किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित हो। स्वार्थी व्यक्ति कभी अपनी बुराई नहीं सुनता। अपनी प्रशंसा करने वालों को सभी प्रश्रय देते हैं। प्रशंसा सुनने वालों को कबीर साहिब ने कहा :

निन्दक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी बिन साबुने, निर्मल करे सुभाय ॥

अपनी आलोचना सुनने वाला व्यक्ति भूलों से बचता है और यही उसके चारित्रिक गुण की एक विशेषता है।

कबीर साहिब ने मानव-चरित्र के उत्थान के लिए यह संदेश दिया कि दूसरा तुम्हारे साथ बुराई करे तो भी तुम उसके साथ अच्छाई करो। कष्ट मिलने पर भी दूसरों के साथ बुराई मत करो। वास्तव में यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति इतनी दृढ़ता से बुराई को ठुकराने लगे तो देश का अध:पतन कभी नहीं हो सकता, पर ऐसा नहीं होता। मानव की सहन-शीलता की सीमाएं भी होती है। वर्गीय समाज में शोषक वर्ग अपने हित में सारी बुराइयां करता है और उसे छोड़ने को तैयार नहीं होता। शोषित वर्ग कितना भी त्याग और बलिदान उनके लिए करे परन्तु उनके चरित्र में परिवर्तन नहीं आता। इसीलिए आज जो अमीर है वह और भी अमीर होता जा रहा है और जो गरीब है वह अधिक गरीब होता जा रहा है। शोषक वर्ग सदा शोषित में बुराइयां देखता है, अपने अन्दर नहीं झांकता। इसीलिए कबीर ने कहा था:

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न होय॥

शोषक द्वारा शोषित पर अन्याय करने का कारण धन और सम्पत्ति का रोब और ऐंठन है। कबीर दास कहते हैं कि जो लोग ऐंठे रहते हैं, वे कुछ भी इस संसार से नहीं उठा पाते। संसार एक बाजार है, जिसमें एक से एक अच्छी वस्तुएं मेहनत करके प्राप्त की जा सकती है। ऐंठने वाले व्यक्ति की नजर उन वस्तुओं पर पड़ती ही नहीं। कबीर साहिब कहते हैं कि नम्रता और परोपकार मानव जीवन को अच्छा और योग्य बनाता है। दूसरों के प्रति की गई अच्छाई सदा साथ रहेगी।

आज चहुँ ओर छल-कपट का फैलाव हो रहा है। कपट जीवन में दुख के सिवा कुछ नहीं लाता। कबीर जी ने सदैव कपट और कपटी से बचने का समर्थन किया :

कपटी मित्र न कीजिए, पेट पैठि बुधि लेत।
आगे राह दिखाय के, पीछे धक्का देत॥

ऐसे व्यक्ति बहुत घातक होते हैं जिनकी वाणी तो मधुर होती है परन्तु मन में बैर होता है। कबीर दास के अनुसार व्यक्ति को ऐसी मधुर वाणी में बात करनी चाहिए जिससे उसका अपना मन भी शीतल हो और दूसरों के ह्रदय में भी निर्मलता का संचार हो। उनके अनुसार कटु वाणी अथवा गाली जब दी जाती है तब वह एक होती है, परन्तु उत्तर में जब गाली निकाली जाती है जो वह एक नहीं, अनेक हो जाती हैं। गाली कलह और कष्ट का मूल है। जो गाली से हार मान कर पलट कर गाली नहीं देता, अपनी वाणी मधुर ही रखता है, वहीं संत है। जो गाली मिलने पर मर मिटता है, प्रहार करता है, वह नीच है। अत: गाली से बचना चाहिए।

लोभ, मद, मोह और क्रोध मानव चरित्र के लिए अभिशाप हैं। लोभी अपने धन को अर्जित करने के लिए आवश्यक और अनावश्यक तरीके अपनाता है, इस प्रकार वह सामाजिक मूल्यों को क्षत-विक्षत कर देता है। लोभी व्यक्ति को समझाते हुए कबीर जी कहते हैं:

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस॥

रावण अपनी बीस भुजाओं और दस सिर होने पर भी लोभ के प्रहार से नहीं बच पाया तो साधारण मनुष्य कैसे बच सकता है। लोभ, मद, मोह और क्रोध मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित हैं, जो विशेष परिस्थितियों में अधिक स्पष्टता से उभरते हैं। इनके कारण मनुष्य विवेकहीन हो जाता है। मोह ज्ञान का हरण कर लेता है। मद मनुष्य को विवेकहीन बनाता है और वह अच्छे-बुरे का अंतर भूल जाता है। जिसके मन में मद होता है वह पतित हो जाता है। कबीर जी कहते हैं:

धन रहे न जोबन रहै, रहै गाँव न ठाँव।
कबीर जग में जस रहै, करके किसका काम ॥

दयावान मनुष्य ही संयम में यश प्राप्त करता है लोभी और भय युक्त व्यक्ति नहीं। समाज में फैली विषमता को रोकना मानव कर्तव्य है। संसार में ओ काम समय पर और तुरंत करने चाहिए क्योंकि क्या पता कब जीवन समाप्त हो जाये। इस संसार में बहुत से लोग बड़े पाप करने के बाद दान, धर्म तीर्थ यात्रा आदि करके अपने पापों पर पर्दा डालने का प्रयास करने हैं। ऐसे लोगों को धिक्कारने हुए कबीर दास ने उन्हें मूल रूप में अच्छा बनने पर बल दिया दिखावा मात्र तो दाँत है।

आज कल बहुत से लोग साधु-संतों का वेष धारण किए घूमते हैं, परन्तु उनका मन मान, बढ़ाई और ईर्ष्यो से भरा रहता है। वे विषय वामनाओं में फंसे होते हैं। इन ढोंगी साधुओं को समझाते वे कहते हैं:

तृष्णा सींची न बड़ाँ दिन दिन बढ़ती जाय।
जवासा का रूख ज्यों, घन मेहा कुम्हलाय।।

जो तृष्णा होती है वह कभी समाप्त नहीं होती। साधु वही है जो मान-अपमान से अप्रभावित रह कर समाज सेवा करता है और धन, मान, ईर्ष्या आदि तृष्णाओं का दमन कर देता है। प्यासा पानी पीकर संतुष्ट हो जाता है परन्तु धन-सम्पदा, सुख और मान की प्यास इन्हें पाकर और भी बढ़ती है। प्रत्येक लाभ के साथ-साथ लोभ बढ़ता जाता है और यह तृष्णा मानव समाज के समुचित विकास के लिए हानिकारक है। कबीर जी कहते हैं:

बड़ा बड़ाई न करें, बड़ा न बोले बोल।
हीरा मुख से न कहै, लाख हमारा मोल॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

साधुता और बड़प्पन ऊँचाई में नहीं, झुक जाने में है, स्वभाव की निर्मलता में है। जो अकड़ता है, वह मिट जाता है। बुराई बड़े होने में नहीं, बुरे गुणों के उदय में है। अभिमान, सारे बड़प्पन तथा यश को नष्ट कर देता है। बड़ा वही है जो समाज का हित सोचता है, विकास की बात सोचता है। लोभ, मद, मोह का त्याग मनुष्य संतोष से कर सकता है। संतोष और विवेक से मन में निर्मलता आती है। मन सहज हो जाता है। दूसरों के प्रति मन में दया की भावना जाग्रत होती है। संतोषी व्यक्ति चिंता-मुक्त होता है। उस पर किसी तरह का दबाव नहीं होता न धन का, न धनवान का। धनवान अथवा सुखी व्यक्ति दूसरों के शोषण के आधार पर सुखी होता है। इसीलिए कबीर जी कहते हैं:

साहेब मेरे मुझको, सूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूं, सूखी छीन नहिं लेय।।

कबीर जी ने संतोष की शिक्षा दी। वे जानते थे कि बुराई की जड़ किसी के व्यक्तिगत सुख से सम्बन्धित होती है, जो सामाजिक हित में नहीं होती। इसीलिए संतोष की आवश्यकता होती है, ताकि मानव-चरित्र में सामाजिक हित को व्यक्तिगत हित पर प्रधानता प्राप्त हो। मान, बड़ाई के पीछे भागने वाले अपने जीवन मूल्य खो देते हैं। अच्छा मानव-चरित्र बनाने के लिए अच्छी संगति होनी चाहिए। कबीर दास ने साधू और सच्चे व्यक्ति की संगति को सर्वोच्च कहा और कुसंगी को निकृष्ट।

कबीर कुसंग न कीजिए, लोहा जल न तिराय।
कदली, सीप, भुजंग मुख, एक बुन्द तिर भाय॥
अजल बुँद आकाश की, पड़ि गई भूमि विकार।
माटी मिलि गई कीच सों, बिन संगति भौ छार।।

साधु का संग करने वाले परोपकारी, निष्काम, ईर्ष्या रहित, नम्र, दयालु, प्रसन्नचित्त, पाप रहित, धैर्यवान, गम्भीर, सुशील, निश्चल, निर्लोभी, सत्यपरायण, परमार्थी और मृदुभाषी बन जाते हैं, जो कि चरम मानव मूल्य हैं। अच्छे व्यक्ति की संगति से मनुष्य का चरित्र आदर्श मानव-चरित्र बन जाता है।

कबीर साहिब के अनुसार सांसारिक पदार्थों का लोभ त्याग देना चाहिए क्योंकि ये पदार्थ गतिमान हैं, नश्वर हैं, आज हैं, कल नहीं रहेंगे। मानव अगर यह समझ ले कि प्रत्येक मनुष्य का दु:ख उसका अपना दु:ख है तो वह पूरे समाज के सुख की कामना करेगा और इस प्रकार सामाजिक विषमताओं का अंत सम्भव हो सकेगा। यदि भला करने की इच्छा मन में हो तो मार्ग स्वत: ही निकल आता है:

जिन खोजा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ॥

कबीर ने उन्हीं मानव मूल्यों का प्रतिपादन किया है, जो मानवीयता से परिपूर्ण समस्त मानव समाज को सूखी और समृद्ध बनाने में उनकी दृष्टि में सक्षम थे। आज भी अगर उनकी शिक्षाओं को हृदय में धारण कर लिया जाये तो मानव चरित्र, जो आज दूषित हो रहा है. निर्मल हो जाएगा, स्वच्छ हो जाएगा और नये आदर्श समाज का निर्माण सम्भव हो पाएगा।

सह-आचार्य (हिन्दी)
खालसा कॉलेज, गढ़दीवाला (पंजाब)।

हाटी समुदाय के त्योहार, उत्सव, मेले एवं पर्व

-वेद सरला कुमारी (शोधार्थी)

भारतीय समाज में त्योहार, उत्सव, मेले एवं पर्व मानव संस्कृति के प्रतीक हैं। इनके माध्यम से मनुष्य अपनी आदि सस्कृति के दर्शन पाता है और इन्हीं के द्वारा वह अपनी छिपी अस्मिता का दर्शन करता है, जिसका प्रभाव आने वाली पोढ़ी पर भी पड़ता है। हिमाचल प्रदेश में अनेक मानवीय समुदाय निवास करते हैं। इन्हीं में से एक 'हाटी' समुदाय भी है, जो जिला सिरमौर के गिरिपार क्षेत्र के अनेक गांवों में निवास करता है। इस समुदाय के प्रत्येक त्यौहारों, उत्सवों, मेलों एवं अन्य पवों में वहां की स्थानीय संस्कृति की झलक विभित्र रूपों में दिखाई देती है। इस समुदाय में पुरातन परम्पराओं एवं मान्यताओं के अनुसार वर्षभर में छोटे बड़े अनेक त्योहार, उत्सव, मेले एवं अन्य पर्व मनाए जाते हैं।

भातियोज-इस त्योहार को स्थानीय बोली में 'त्यार' कहा भी जाता है, परन्तु अधिकतर स्थानों पर इसे भातियोज ही कहते हैं। यह पौष मास में मनाया जाता है, जिसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है-पौष मास में जब चारों तरफ बर्फ पड़ी होती है तो वहां बकरे काटे जाते हैं। लोग शराब व मांस की दावत कई दिनों तक मनाते हैं। बकरे पौष माह के महीने में काटे जाते हैं, लेकिन इन्हें पूर्व वर्ष पाल कर रखा जाता है, जिसे भातीयोज कहा जाता है। हाटी समुदाय में त्योहार (भातियोज) भिन्न-भिन्न तिथियों में मनाए जाते हैं। इसे गाने की परम्परा सम्पूर्ण हाटी समुदाय में एक ही प्रकार की है।

माघी-सिरमौर के गिरिपार क्षेत्र में माघी त्योहार का अलग महत्त्व है। यह माघ मास से प्रथम दिन से आरम्भ होकर आखिरी दिन तक चलता है। इस सम्बन्ध में उल्लिखित है कि गिरिपार क्षेत्र में सबसे बड़ा त्योहार माघी होता है। संक्राति के दिन खाड़ू-बकरे काटे जाते हैं, जिनका मास सगे सम्बन्धियो में बांटा जाता है। पूरे मास नाच-गाना होता है। लोग खाने खिलाने में व्यस्त रहते हैं, क्योंकि हिमपात होने के कारण ठण्ड अधिक रहती है। इस त्योहार के समय सभी सगे सम्बन्धी, विवाहिता बेटियां अतिथि बनकर आते हैं। इसमें विशेष पकवान बनाए जाते हैं जिसे इस प्रकार उल्लिखित किया गया है कि इन प्रचलित पकवानों में पहले दिन को 'मुड़ांटी' कहते हैं तथा इस दिन गेहू, चावल, तिल, भांग के दानों एवं चौलाई के उबाले हुए तथा भुने हुए अनाज के दानों से भिन्न-भिन्न किस्म का 'मूड़ा' बनाया जाता है। मूड़ा के अलावा इस त्योहार के अवसर पर अन्य अनेक पकवान बनाए जाते हैं। इस त्योहार के दौरान मांसाहारी परिवारों में अपने सामर्थ्य के अनुसार बकरे, खड्डु इत्यादि काटे जाते हैं।

शिवरात्रि-यह पर्व फाल्गुन मास में मनाया जाता है। हाटीवासियों के प्रसिद्ध देवता शिर्गुल को भगवान् शिव का रूप गाना जाता है। इस दिन लोग प्रात: स्नानादि से निवृत होकर पूजा पाठ करते हैं और उपवास रखते हैं। इस क्षेत्र में शिवरात्रि के दिन रोट बनाने की विशेष परम्परा प्रचलित है। रोट बनाने के लिए अपने खेतों से उगे सात अनाज एकत्रित करके घराट में पीसे जाते हैं और उसी से भगवान् शिव के नाम के सात रोट बनाए जाते हैं। रात्रि के समय घर के मुखिया व्यक्ति द्वारा पाजा के पेड़ का 'चन्दुआ' बनाया जाता है, जिसमें रोट बिना जाता है कहीं-कहीं उसे स्थानीय बोली में ईशर भी कहा जाता है। ईशर बीनते समय विशेष धार्मिक लोक गाथा गाई जाती है। गोबर गणेश बनाए जाते हैं, फूल, चावल, गंगाजल, गौमुत्र, पंचामृत, घी का दीपक आदि से भगवान् शिव की पूजा की जाती है। सुबह के समय भगवान् शिव की पूजा करके चन्दुआ को घर के बाहर एक कोने में लटकाया जाता है और उपवास खोल कर सभी लोग भोजन करते हैं।

बिशू (मेला) - बिशू हाटी संस्कृति परम्परा की एक भिन्न पहचान है। यह गिरिपार क्षेत्र में विभिन्न स्थानों वर्तमान में ही नहीं बल्कि काफी समय पूर्व से आयोजित किए जाते हैं, इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है- बिशू उत्सव चैत्र के सौर महीने के आखिरी दो दिनों और बैसाख के पहले दिन मनाया जाता है। यह कई गांवों में आयोजित किया जाता है और इसकी तिथियां अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग होती हैं। इसमें लोग नाचते हैं, ठोडा खेलते हैं और अपने दोस्तों को दावत देते हैं। बैसाख की संक्रांति से गिरिपार के विभिन्न क्षेत्रों में बिशू लगने आरम्भ हो जाते हैं। सर्वप्रथम स्थानीय देवी-देवताओं की पालकियां (रथ) या छड़ियां बिशू लगने वाले स्थान पर लाए जाते हैं। पारम्परिक वाद्ययंत्र ढोल, नगाड़े, करनाल, शहनाई एवं लोक धुन के साथ देवी देवताओं का स्वागत किया जाता है।

विश को जबड़ी (मैदान) को एक दिन पहले ही सजाया जाता है। मैदान के एक और खान पान तो दूसरी ओर विभिखारी बन्धी वस्तुओं से सजी दकानें होती हैं। वहीं एक ओर मुख्य आकर्षण केन्द्र टोडा खेल खेलने के लिए खाली जगह चिन्हित की जाती है, जिसमे यह खेला जाता है। यह खेल महाभारत के प्रतीकात्मक युद्ध के रूप में खेला जाता है। इसमें दो दल भाग लेते हैं जिन्हें स्थानीय बोली में 'खुद' कहा जाता है। ठोडा खेल खेलने वाले खिलाड़ियों को न्यौता देकर बुलाया जाता है। अधिकतर विशु में दो समूह भाग लेते हैं। पारम्परिक भेषभुषा धारण किए तोडा खेल के खिलाडी बिश की जबडी मैदान में पहुंचने से पूर्व ही नाव गाना आरम्भ कर लेते हैं। हाथ में तलवार, डागरा (पौराणिक शस्त्र), शरी (तीर), धणू (कमान), डंडे लिए पारम्परिक वाद्य मंत्री सहित नाच-गान करते, एक-दूसरे को ललकारते हुए खिलाड़ी जुबड़ी में पहुंचते ही देवी-देवताओं को प्रणाम कर अपनी विजय के लिए प्रार्थना करते हैं। इसकी एक विशेषता यह है कि सभी ठोड़ा दल राजपूत वंशजों के होते हैं। इस अवसर पर परिवार के सभी सदस्यों के लिए नए कपड़े, गहने इत्यादि बनाए जाते हैं। घर की मुखिया महिलाएं विवाहिता बेटियों और अन्य रिश्तेदारों को मूड़ा, मिठाइयां एवं पैसे बांटती हैं।

गूगानवमी-यह पर्व भाद्रपद मास में मनाया जाता है। इस अवसर पर विशेष तौर पर गूगा पौर की पूजा की जाती है। इस समय गुगा महाराज को एक सप्ताह से एक माह तक गिरिपार क्षेत्रों में भ्रमण कराया जाता है। कोली (हरिजन) समुदाय के लोग गूगा पीर देवता को गांव-गांव में ले जाते हैं। संध्याकाल के समय एक पवित्र स्थान पर गूगा देवता को रखा जाता है और एक कोने में लकड़ियां एकत्रित करके अग्नि जलाई जाती है। उसके बाद सर्वप्रथम देवता की पूजा अग्नि, घी आदि से आरम्भ की जाती है। वाद्ययंत्र की ध्वनियों के साथ-साथ गूगा देवता के पुजारी एवं अन्य लोग थिरकने लगते हैं। थिरकते हुए अग्नि की लपटों में कूद जाते हैं। अपनी नंगी पीठ पर गर्म लोहे के औजार (कुल्ड़े, चिमटा आदि) मारते हैं। नंगी पीठ पर मारते-मारते वाद्ययंत्रों के साथ देव नृत्य करते हैं। उनके भीतर देवता इस प्रकार वास करते हैं कि शान्त होने के बाद एक भी जख्म शरीर पर देखने को नहीं मिलता।

रक्षा बन्धन-इस त्योहार में बहनें अवश्य ही अपने भाई को राखी बांधने मायके जाती हैं। किसी कारण यदि भाई-बहन का मिलन सम्भव नहीं हुआ तो अवश्य ही बहन का हिस्सा उसके घर पहुंचाया जाता है, जिसमें पैसे, मूड़ा-मिठाई, कपड़े आदि होते हैं। इस त्योहार के अवरार पर पुरोहित द्वारा घर-घर जाकर अपने यजमानों को मौली का धागा बांधा जाता है, जिसे रक्षा का प्रतीक माना जाता है।

दीवाली और बूढ़ी दीवाली-हाटी समुदाय के सभी त्यौहारों में दीवाली और बूड़ी दीवाली को प्रमुखता दी जाती है। दीवाली और उसके एक माह बाद बूढ़ी दीवाली को गिरिपार क्षेत्र में हर्षोल्लास से मनाया जाता हैं। प्रसिद्ध पुस्तक 'सिरमौर रियासत का इतिहास' में उल्लेख है कि गिरिपार क्षेत्र में दो दीवालियां मनाई जाती है, एक छोटी दूसरी बड़ी। छोटी दीवाली से एक मास पश्चात् बड़ी दीवाली होती है। बड़ी दीवाली को ही गिरिपार क्षेत्र में बूढ़ी दीवाली कहा जाता है, जिसे हाटी समुदाय के लोग धूमधाम से मनाते हैं।

दीवाली सम्पूर्ण भारतवर्ष की भांति हाटीवासी दिवाली का त्योहार हर्षोल्लास से मनाते हैं। दीवाली आरम्भ होने से एक सप्ताह पूर्व से इनके घरों में साफ-सफाई का कार्य होता है। इस दिन लोग अपने घरों में माता लक्ष्मी, श्री गणेश, भगवान् शिव एवं अन्य देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इस त्योहार में विवाहित बेटियों को मिठाई, उपहार, पैसे आदि देने का रिवाज है। इसे स्थानीय बोली में 'दयाल्था' कहा जाता है। दीवाली की रात और दूसरे दिन हाटीवासियों के गांव में हर घर से एक व्यक्ति मशाल लेकर स्थानीय देवी-देवता के प्रांगण में जलाते हैं, जो देवी-देवताओं के प्रति लोगों की आस्था को प्रकट करती हैं। सैकड़ों की संख्या में जलती ये मशालें अत्यन्त शोभनीय नज़र आती हैं। देवी देवताओं की शक्तियों की यदि बात की जाए तो सैकड़ों की संख्या में जलती ये मशालें किसी भी व्यक्ति को नुकसान नहीं पहुंचाती। अधिकतर क्षेत्रों में दीवाली के दूसरे दिन भी खूब नाच-गान किया जाता है। इसे स्थानीय बोली में 'जोन्दोई' कहा जाता है। नाच-गाने के साथ-साथ स्थानीय लोग मेहमानों एवं अन्य के लिए नाटक की प्रस्तुति भी करते हैं। इस अवसर पर विशेष रूप से 'पाथा' नामक पात्र को अन्न से भरकर उसमें बड़ा घी का दीया जलाया जाता है, जो माता लक्ष्मी को समर्पित किया जाता है।

बूढ़ी दीवाली-वर्षभर के त्योहारों में बूढ़ी दीवाली हाटीबासियों का प्रमुख त्योहार है। यह सिरमौर के गिरिपार क्षेत्रों में दीवाली के ठीक एक माह बाद मनाया जाता है। परम्परानुसार भगवान् श्री राम के अयोध्या लौटने की खुशी में लोग एक माह तक खुशियां मनाते है, इस कारण दीवाली के एक माह बाद बूढ़ी दीवाली (बूढी दियायी) मनाई जाती है। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है कि सिरमौर में बूढी दियाली का त्योहार एक महत्त्वपूर्ण त्योहार है। दीवाली के एक मास बाद मनाया जाने वाला यह त्योहार एक सप्ताह तक चलता है। यह त्योहार तीन से सात दिनों तक बड़े धूमधाम से मनाया जाता है।

यह गिरिपार के शिलाई एवं उसके साथ लगते अन्य क्षेत्रों के प्रत्येक गांव में मनाया जाता है। इस अवसर पर परिवार के जो सदस्य परों से बाहर रहते हैं वे अवश्य ही अपने पैतृक घर वापस आते हैं। इस दिन खाने में विशेष पकवान भी बनाए जाते हैं। इस त्योहार की यात्रा ब्रह्म मुहूर्त में मशाल जला कर आरम्भ की जाती है। दीवाली की भांति के गांव के प्रत्येक घर में एक व्यक्ति मशाल लेकर स्थानीय देवी-देवता के प्रांगण में जाते हैं और सभी एकत्रित होकर मशाले जाते हैं। इन मशालों को स्थानीय बोली में डाह' कहा जाता है. जिसे इस प्रकार उल्लिखित किया गया है कि दीवाली के पहले दिन जिसे छोटी अमावस्या मंडियाला कहा जाता है. जिस तरह होलिका जलाई जाती है उसी प्रकार एक 'डाह' नामक लकडियों का देर बनाया जाता है। इसको 'बिहल' के मनिया, बिहल यामकों के सुखे डंडे को इकटठा करके बनाया जाता है व जलाया जाता है। इन्हीं मशालों को जलाते समय सभी नृत्य करते हैं और *लिबर' का गान करते हैं। लगभग एक सप्ताह चलने वाले इस त्योहार में गाव के लोग नाटियों का गान करते हैं। इस त्योहार में एक विशेष रिवाज यह है कि विवाहिता बेटिया मूडा (चावल, गेहूं, भांग से बना मिश्रित नमकीन) लेकर अपने मायके जाती है। सुबह के समय वे 'भिकरी' नामक नाटी गान और नृत्य करती हैं।

संक्रान्ति पर्व-सिरमौर में संक्रान्ति पर्व का अलग-अलग धार्मिक महत्त्व है। गिरिपार के क्षेत्रों में प्रत्येक मास की संक्रान्ति को पवित्र माना जाता है। संक्रान्ति के दिन अवश्य ही घरों में साफ-सफाई की जाती है। इस दिन कुछ विशेष भोजन सिड्डु, खीर, पांडे, चिलड़े, बाबर, दाल-भात, दाणा-भात, भाग-भात, खिण्डा इत्यादि बनाए जाते हैं। बारह मास में से कुछ संक्रान्तियों का विशेष धार्मिक महत्व है, जिनमे मक्कर, बैसाख, भाद्रपद तथा अश्विन सङ्क्रान्तियां प्रमुख हैं।

मकर संक्रान्ति हाटीवासियों के जीवन में इस संक्रान्ति पर्व का विशेष महत्त्व है। इसे स्थानीय बोली में 'माघ रो साजी' कहा जाता है। मान्यता है कि इस दिन देव धरती पर अवतरित होते हैं। इस दिन आत्मा को मोक्ष प्राप्त और प्रकाश का आगमन तथा अंधकार का - नाश होता है। इस दिन दान-पुण्य, जप-तप और धार्मिक अनुष्ठानों का अनन्य महत्त्व होता है।

बैसाख संक्रान्ति-इस संक्रान्ति पर्व का हाटीवासियों में सबसे अधिक महत्त्व है। इसे 'बिशू रो साजी' कहा जाता है। इस दिन प्रत्येक गांवों के स्थानीय देवी-देवताओं के मन्दिर में एक धार्मिक पर्व का आयोजन किया जाता है। मन्दिर में सुबह छः सात बजे से प्रत्येक घर के लोग दर्शन करने पहुंच जाते हैं। वहां पहुंच कर एक विशेष प्रकार की घास 'मूंजी', बियूल और भांग आदि से लम्बी लम्बो रस्सियां बनाई जाती है और उसमें हिमाचल का राज्य फूल बुरांस बिना जाता है। बहुत लम्बी-लम्बी फूल मालाएं बनाकर मन्दिर के विशेष द्वार तथा चारों ओर लगाई जाती हैं। इन मालाओं से सजा मन्दिर अत्यन्त शोभनीय नजर आता है।

चीड़ी संक्रान्ति-भाद्रपद मास की संक्रान्ति को 'चीड़ी साजी' कहा जाता है। सक्रान्ति के दिन हाटीवासी अपने घर के आंगन के एक कोने में 'चीड़ा' की स्थापना करते हैं। लोग लकड़ी का खम्बा गाड़कर उस पर एक पत्थर रखते हैं। पत्थर पर अपने खेतों से चार कोने वाला मिट्टी का एक टुकड़ा और कुशा रखते हैं और धूप, दीप, फूल, चावल, खौर, हलवा आदि से उसकी पूजा की जाती है। संक्रान्ति आरम्भ से समाप्ति तक चीड़ा पर अग्नि जलाई जाती है और अश्विन गारा की संक्रान्ति आने से एक दिन पहले बीड़ा की पूजा करके इसे अपनी जमीन या गोबर के ढेर पर रखा जाता है।

दीपावली की संक्रान्ति-दीपावली का हाटी समुदाय में विशेष महत्त्व है, क्योंकि इस संक्रान्ति में दो त्योहार दीवाली और बूढ़ी दीवाली मनाए जाते हैं। मकर, बैसाख और चीड़ी संक्रान्ति माह आरम्भ के प्रथम दिवस पर मनाई जाती है परन्तु दीपावली की सक्रान्ति कार्तिक मास में अमावस के दिन मनाई जाती है, जिसे हाटीवासी 'दयाई रो साजो' कहते हैं। शिमला और सोलन जिला की सीमाओं के साथ लगते क्षेत्रों में लोग एक सार्वजनिक स्थान पर अग्नि जलाते हैं और उसकी पूजा उबले गेहूँ, अखरोट, भांग आदि से करते हैं। पूजा के बाद बच्चे अग्नि की छोटी मशालें जिसे स्थानीय बोली में 'टूरे' कहा जाता है, जलाते हैं और उसे अपने सिर के ऊपर से चारों दिशाओं में घुमाते हैं। यह एक प्रकार से खेल के रूप में खेला जाता है।

शांत-शांत उत्सव का हाटी समुदाय में अत्यधिक महत्व है। यह उत्सव स्थानीय देवी-देवताओं के मन्दिर में आयोजित किया जाता है। इसका आयोजन विशेष तौर पर नव मन्दिर निर्माण के पश्चात् किया जाता है। नव मन्दिर के शिखर पर 'कुरुड़' की स्थापना के लिए सर्वप्रथम प्रसिद्ध पंडित से शुभदिन और मुहूर्त निकाले जाते हैं। उसके बाद कुरुड़ स्थापना से एक सप्ताह पूर्व शांत की तैयारियां आरम्भ हो जाती हैं। सर्वप्रथम पूरे परगने के लोग एकत्रित होकर खुमली का आयोजन करते हैं, जिसमें परगने के प्रत्येक घर से एक व्यक्ति (केवल पुरुष) अवश्य ही भाग लेता है और सभी को अनेक प्रकार के कार्य सौंपे जाते हैं। प्रत्येक परिवार श्रम दान एवं धन दान करने के लिए उपस्थित रहता है। इस पर्व में स्त्रियों के लिए विशेष कार्य घी उपलब्ध कराना सौंपा जाता है। शांत के दिन पूरे परगने एवं स्थानीय देवी-देवताओं को पालकियां मन्दिर प्रांगण में पहुंच जाती हैं। उनके स्वागत में महिलाएं दूध, गौमूत्र एवं गंगाजल लेकर आगे-

आगे चलती हुई रास्ते को पवित्र करती हैं और पवित्र ढोल नगाड़ों से पूजा अर्चना की जाती है। मन्दिर परिसर में उनसे कुरुड़ लाने के लिए अनुमति मांगी जाती है। जिस स्थान पर कुरुड़ बनता है वहां उठाने से पहले विधि-विधान से पूजा की जाती है। विधि-विधान से लगभग तीस से पचास-साठ पुरुष अपने कंधों पर कुरुड़ उठाते हैं। कुरुड़ के कपर देवी देवता के गुर देव नृत्य करते हुए मन्दिर को ओर चलते हैं। साथ ही अनेक पुरुष 'लिंबर' गान करते हैं। शांत उत्सव में लिंबर का विशेष महत्व है। यह एक प्रकार की देव स्तुति है. जिसे देवी देवता के गूर (माली) एवं अन्य पुरुषों द्वारा गाया जाता है। देवी देवताओं की पालकियों के माथ कुरुड़ को मन्दिर प्रांगण में पहुंचाया जाता है। उसके बाद कुरुड़ को मन्दिर के शिखर पर पहुंचाने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। देवी देवताओं की पालकियों व गूर का नृत्य और लिंबर गान के साथ साथ कुरुड़ को मन्दिर के शिखर पर स्थापित किया जाता है। कुरुड़ पर बकरा बकरी की बलि दी जाती है। कुरुड़ स्थापना के बाद विधि-विधान से प्राण प्रतिष्ठा एव नव निर्मित मन्दिर की पूजा अर्चना की जाती है।

जागरा (जगराता)-हाटीवासी देवी-देवताओ में अटूट विश्वास रखते हैं। वहां प्रत्येक गांव में एक मन्दिर अवश्य होता है। अधिकतर मन्दिर देवता शिर्गुल, बिजट, महासू, गूगापीर, माता बिजाई, गड़ाली, डूंडी, ठारी आदि के होते हैं। वर्षभर में किसी भी शुभदिवस पर जागरा का आयोजन किया जाता है। जिस गांव में जागरा होता है उसके आस-पास जो भी मन्दिर बना हो सभी देवी-देवता इसमें आते हैं। देवताओं की पालकियां (रथ) और कई देवताओं की छड़ी जागरा में लाई जाती हैं। जागरा आयोजन के लिए घर की छत से लेकर धरातल तक सफाई की जाती है। प्रयोग की जाने वाली प्रत्येक वस्तु और कपड़े धोए जाते हैं। सर्वप्रथम देवता के ढोल, करनाल आदि की धुन के साथ देवी-देवताओं की पालकियां और छड़ी मन्दिर से निकलती है। घर के समीप पहुंचने पर गांव की महिलाएं छड़ा (दूध, गौमूत्र आदि) से रास्ते का पवित्रीकरण करती हैं और पालकियां और छड़ियां घर में प्रवेश करती हैं। उनके लिए अन्न (गेहूँ, मक्की, जौं) का आसन लगाया जाता है जिस पर देवताओं के मोहरे (मूर्तियां) रखी जाती हैं। जिस अन्न के आसन पर देवी-देवताओं के मोहरे रखे जाते हैं उसे स्थानीय बोली में 'पुराच' कहा जाता है। इस पुराच पर पुजारी का हक माना जाता है। गांव व परिवार के लोग देवी-देवता के लिए पाथा (अन्न के लिए विशेष पात्र) में भरकर अन्न देवी-देवताओं को भेंट स्वरूप देते हैं, जिसे स्थानीय बोली में 'पुजावण' कहा जाता है। जागरा पूर्व निश्चित होता है उसी समय से घर की महिलाएं विशेष रूप से देवी देवताओं के नाम का घी पूजा के लिए रखती है, जिसे स्थानीय बोली में 'दिओण' कहा जाता है। उसी पवित्र दिओण से देवताओं की पूजा की जाती है। मान्यता है कि जागरा कराने वाले परिवार को देवता अपना भरपूर आशीर्वाद देते हैं।

जागरा में सन्ध्या काल के समय ढोल के साथ पारम्पिरिक पूजा की जाती है। उस समय वहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति वाद्य यंत्रों के साथ स्वयं ही थिरकने लगता है। पूजा समाप्त होने पर देवता के गुर से अरज (प्रार्थना) की जाती है-

सब करिअ आये देवा,
सत की पौण जिआए तोरे बान्दे ऐ देवा,
कान्डा प चुटू तो ताव सताव।

जागरा आयोजन करने वाले परिवार के सभी सदस्य एक-एक करके देवी-देवताओं को भेंट चढ़ाते हैं और स्वास्थ्य, अन्य समस्याओं का समाधान करने की कामना करते हैं। इसमें विशेष रूप से 'आखर पौर' के बन्धन का ध्यान रखा जाता है। 'आखर' वह बन्धन है जिसमें तीन चार और इससे अधिक परिवार जुड़े होते हैं। देवी-देवताओं की आज्ञा बिना यह बन्धन तोड़ा नहीं जाता।

रेणुका जी मेला अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त नदी, झरने, पहाड़, मन्दिरों, पवित्र स्थलों को अपने आंचल में समेटे रेणुका जी का यह सुंदर रूप लाखों श्रद्धालुओं को अपनी ओर खींचता है। इस पवित्र स्थान पर कार्तिक मास में अन्तर्राष्ट्रीय मेले का आयोजन किया जाता है, जिसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है-हर वर्ष पारंपरिक तरीके और धूमधाम से लगने वाला श्री रेणुका जी मेला तब इसकी छटा व सुंदरता में और चार चांद लगा देता है, जब मां और बेटे का अद्भुत और अनूठा मिलन होता है, जिसका मनमोहक दृश्य देखते ही बनता है। माँ और बेटे के मिलन के पर्व की इसी सत्यता की पृष्ठभूमि से जुड़ा है श्री रेणुका जी मेला और पवित्र स्थल रेणुका जी। इसका वर्णन इस प्रकार भी मिलता है। रेणुका जी मेले की एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि इस समय तक किसान खरीफ की फसल काट कर बेच चुके होते हैं। उन्हें दैनिक प्रयोगी की वस्तुओं को एकत्रित करने की अधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि शीघ्र ही आने वाली सर्द ऋतु में हिमपात के कारण बाहर आना-जाना असंभव हो जाता है। यह मेला स्थानीय उत्पादों के लिए एक अच्छी मण्डी भी उपलब्ध करवाता है। ऊँचे पहाड़ों पर रहने वाले ग्रामीण अपनी पीठ या खच्चरों पर लादकर मिर्च, अदरक, अखरोट, घी, हल्दी एवं अनेक प्रकार की दालें आदि लाते हैं, जो इस मेले में हाथों-हाथ बिक जाते हैं। रेणुका जी मेले में कई देवी-देवताओं के साथ आते हैं। इस मेले में मां और बेटे का मिलन मुख्य आकर्षण का केन्द्र होता है।

निष्कर्षत: उपर्युक्त वर्णित त्योहारों, उत्सवों, पर्वों, मेलों के अतिरिक्त हाटी समुदाय के लोग वर्षभर में आने वाले धार्मिक पर्वों पूर्णिमा, अमावस, एकादशी, अष्टमी, नवरात्र, कृष्णजन्माष्टमी, पंचमी आदि के समय व्रत-अनुष्ठानों में विश्वास रखते हैं और खोड़ा, होली, मूल, शणायी हरयाल्टी भैया दूज करवा चौथ दशहरा, जातर आदि पर्व भी मनाते हैं। इस क्षेत्र में भौगोलिक स्थिति तथा जलवाद के अनुसार वर्षभर के त्योहार रीति-रिवाओं के साथ मनाए जाते हैं जिसमें गिरिपार क्षेत्र की संस्कृतिक की डालक स्पष्ट नजर आती है।

संदर्भ :

1. पवन बश्वगी, हिमाचल गिरिपार का हाटी समुदाय, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रिन्ट हाउस, लखनऊ, 2011. 9. 29
2. कंवर रणजोर सिंह, सिरमौर रियासत का इतिहास, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, 2007, 7. 157
3. जगमोहन बलोखरा, अलौकिक हिमाचल प्रदेश, एच जी पब्लिकेशन (ए यूनिट ऑफ एचजी ग्रुप ऑफ कम्पनीज), नई दिल्ली, 2015, 9411
4. सिरमौर स्टेट गजेटियर 1904 (पार्ट-ए), कम्पाइल्ड एंड पब्लिचिंग अंडर द ऑथोरिटी ऑफ द पंजाब गर्वनमैंट, 1907, 7. 68
5. कंवर रणजोर सिंह, सिरमौर रियासत का इतिहास, हिमाचल कला संस्कृति भाषण अकादमी शिमला, 2007. 9. 158
6. सुदर्शन वशिष्ठ, पर्व-उत्सव, सुहानी बुक्स, सी-37, पांडव नगर कॉम्पलेक्स, दिल्ली, 2007, पृ. 180
7. पवन बख्शी, हिमाचल गिरिपार का हाटी समुदाय, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रिन्ट हाउस, लखनऊ, 2011, 1. 66
8. वही. पू. 112
9. जग गोहन बलोखरा, अलौकिक हिमाचल प्रदेश, एच.जी. पब्लिकेशन (ए यूनिट ऑफ एब.जी. ग्रुप ऑफ कम्पनीज), नई दिल्ली, 2015, पृ. 428-429
10. मीया गोवर्धन सिंह एवं प्रो. चमनलाल गुप्त, हिमाचल प्रदेश का इतिहास, संस्कृति और आर्थिक परिवेश, मिनर्वा बुक हाऊस, शिमला, 2006. 5 220

समाजशास्त्र विभाग

आई.ई.सी. विश्वविद्यालय, बही, जिला सोलन (हि.प्र.)

मो. 9418718206,

ई-मेल: sharmasarla}|@gmail.com

ज्योतिष शास्त्र एवं भारतीय ज्ञान परंपरा

-सुश्री सरिता

सारांश : ज्योतिष शास्त्र भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसे प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक ज्ञान, विज्ञान और संस्कृति के विभिन्न आयामों में उपयोग किया गया है। यह शास्त्र न केवल खगोलीय घटनाओं के अध्ययन पर आधारित है, बल्कि यह मानव जीवन, समाज, और प्रकृति के साथ गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। इस शोध पत्र में ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति, इसका भारतीय ज्ञान परंपरा में स्थान, और वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।

परिचय: भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था (ऋग्वेद, 10/71/7)। छात्रों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद् के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परंपरा के समिद्ध हेतु अतुल्य योगदान दिया है।

गुरुकुल शिक्षा के प्रमुख आधार स्तम्भ थे। शिक्षार्थी अठारह विद्याओं छः वेदांग, चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद), चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, शिल्पवेद), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र का अर्जन गुरु के निर्देशन में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुष्ठानपूर्वक अभ्यास कर सम्पादन करते थे।'

भारतीय ज्ञान परंपरा की जड़ें अत्यंत प्राचीन काल में स्थित हैं, जहाँ वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों ने सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विचारों को दिशा प्रदान की। ज्योतिष शास्त्र, वेदांगों में से एक, खगोल विज्ञान और भविष्यवाणी की कला के रूप में विकसित हुआ। यह पंचांग, ग्रह-नक्षत्रों की गति और काल गणना पर आधारित है।

ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति : वैसे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के साथ ही ज्योतिष शास्त्र का इतिहास प्रारम्भ होता है। अनन्त आकाश में विद्यमान अनन्त ज्योतिष पिण्डों का ज्ञान करना कठिन ही नहीं अपितु असमभ्व प्रतीत होता है। तथापि मानव ने प्रयास निरन्तर जारी रखा है, जिसके कारण मनुष्य ने अन्तरिक्ष के अनेक रहस्यों को सुलझाने में सफलता प्राप्त की है तथा आगे भी वह सतत् प्रयत्नशील है। ब्रह्माण्ड अथवा अन्तरिक्ष से जुड़े हुये अनेक ऐसे प्रश्न है जो निश्चयात्मक रूप से आज तक नहीं सुलझ सके हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से समस्त ज्ञान परम्परा का मूलाधार वेद है। समस्त विद्याओं का आविर्भाव वेदों से ही माना जाता है। वेदों में भी ऋग्वेद्र को सबसे प्राचीन माना गया है। यद्यपि इस वैदिक कालखण्ड में ज्योतिष शास्त्र का कोई भी स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता हैं, परन्तु ज्योतिष शास्त्र के अनेक मूलभूत विषय वेदों के मन्त्र भाग एवं संहिता भाग में प्राप्त होते हैं। 'ओरायन' नामकग्रन्थ में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महोदय ने ऋग्वेद का काल ईपू. 4500 माना है, जबकि वैदिक सम्पत्ति नामक ग्रन्थ में पं. रघुनन्दन शर्मा ने ऋग्वेद का रचना काल 22,000 ई.पू. माना है। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र का कालखण्ड भी इसी के समान माना जा सकता है। विभिन्न इतिहासकार एवं प्राचीन साहित्य के रचयिता भी यह कहते हैं कि ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ काल से ही हुई है। उस काल में मानव वन के जीव-जन्तुओं के साथ ही वन में रहते थे। मानव जीव-जन्तुओं के साथ सूर्योदय एवं सूर्यास्त की स्थिति को देखकर उसे समझने का प्रयास करता रहा होगा और वहीं से काल गणना का आरम्भ हुआ। कालान्तर में शनैः शनैः ज्योतिष शास्त्र का व्यवहार दैनिक जीवन में भी अपरिहार्य रूप से हुआ होगा।

ज्ञान-विज्ञान के अनेक विषयों का ज्योतिष शास्त्र में समाहार है, और वैदिक काल तक इस शास्त्र के कोई भेद नहीं किये गये थे परन्तु कालान्तर में मुख्य रूप से इसके तीन स्कन्ध प्रतिपादित किये गये सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। आचार्य वराहमिहिर ने ही वस्तुत: तीनों ही स्कन्धों में पृथक् रूप से ग्रन्थों की रचना की है। इन तीनों स्कन्धों को ही त्रिस्कन्ध ज्योतिष के नाम से जाना जाता है।

त्रिस्कन्ध ज्योतिष में 'प्रश्न और शकुन' को मिलाकर कुल पांच स्कन्ध भी कुछ आचार्यों ने कहे हैं। इस कारण में ज्योतिष को पाञ्छ स्कन्धात्मक ज्योतिष भी कहा गया।

ज्योतिष शास्त्र का आरंभ वैदिक काल में हुआ, जहाँ इसे वेदांग के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इसकी दो मुख्य शाखाएँ हैं।

1. **सिद्धांत ज्योतिष**-खगोल विज्ञान पर आधारित, जो ग्रहों और तारों की गति का अध्ययन करता है।
2. **फला ज्योतिष**-व्यक्तिगत कुंडली, ग्रहों की दशा, और मानवीय जीवन पर उनका प्रभाव।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्योतिष का स्थान-भारतीय संस्कृति में ज्योतिष का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। यह शास्त्र न केवल धार्मिक अनुष्ठानों और उत्सवों में उपयोगी रहा है, बल्कि कृषि, चिकित्सा, वास्तु और सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1. **वैदिक साहित्य**-वेदों में ज्योतिष को धर्म और प्रकृति के साथ जोड़ा गया है।
2. **धार्मिक अनुष्ठान**-हर धार्मिक क्रिया के लिए शुभ मुहूर्त का निर्धारण ज्योतिष के आधार पर किया जाता है।
3. **अध्यात्म और योग**-ग्रहों और नक्षत्रों का योग साधना और ध्यान पर प्रभाव माना गया है।

वर्तमान युग में ज्योतिष शास्त्र की प्रासंगिकता जन्म से मृत्यु पर्यन्त ज्योतिष शास्त्र मानव जीवन के लिए प्रत्येक क्षेत्र में सहयोगो एवं कल्याणकारी है। उत्तम संतान प्राप्ति के लिये गर्भाधान काल का ज्ञान ज्योतिष द्वारा किया जाता है, जो कि षोडश संस्कारों में प्रथम संस्कार है। उसके उपरान्त बालक के नाम का निर्धारण, अन्न प्राशन, विद्यारम्भ आदि मुहूर्तों का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा ही होता है। इसी प्रकार के समस्त कार्य कालाधीन है। ज्योतिष शास्त्र कालनियामक होने के कारण सर्वप्रथम काल निर्धारण में मानव मात्र के लिये सहायक व उपयोगी है। मानव जीवन में कर्म सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पूर्वजन्मार्जित कर्म का फल ही इस जन्म में भोगना होता है, और उसी के अनुरूप व्यक्ति का जन्म होता है। इसका विवेचन करते हुए कर्मविपाकसंहिता में वर्णन किया गया

पूर्व जन्म जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों के फलस्वरूप व्यक्ति को स्वर्ग तुल्य सुखों की प्राप्ति अथवा नरक तुल्य कष्टों की प्राप्ति होती है। कर्म फल के आधार पर ही व्यक्ति देवत्व अथवा राक्षसत्व को प्राप्त करता है। कर्म फल के कारण ही व्यक्ति बन्धन और अथवा मोक्ष प्राप्त करता है। कर्म फल के कारण ही मनुष्य पतन या उन्नति को प्राप्त करता है। इन सिद्धान्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य अपने कर्मों के अधीन अपने भविष्य का निर्माण करता है। वैसे ज्योतिष शास्त्र व्यक्ति के जन्म से मृत्यु पर्यन्त सभी विषयों से व प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ा हुआ है, किन्तु मुख्य रूप से मानव जीवन में निम्नलिखित विषयों में ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता परिलक्षित होती है। जैसे- 1. गर्भाधान काल के निर्धारण में 2. उत्तम संतति की प्राप्ति में 3. नामकरण, विद्यारम्भ, व्रतबन्ध, चूड़ाकर्म, विवाह आदि अनेक प्रमुख संस्कारों के मुहूर्त निर्धारण में 4. आयुष्य ज्ञान में 5. आजीविका निर्धारण में 6. रोग, दुर्घटना के ज्ञान में चिकित्सा में 7. यात्रा में 8. गृहनिर्माण, गृहप्रवेश आदि वास्तु सम्बन्धी मुहूर्त के विचार में 9. पारिवारिक संबंधों के विचार में 10. मौसम, पर्यावरण, कृषि, प्राक्तिक आपदा, किसी राष्ट्र या प्रदेश की राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक स्थिति के ज्ञान, समर्घ महर्ष, वृष्टि, शकुन आदि के विचार में, 11. काल गणना व पञ्चाङ्ग निर्माण में। इनके अतिरिक्त ज्योतिष एक सार्वभौमिक विज्ञान है, जो मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से प्रत्यक्षत: जुड़ा हुआ है।

आधुनिक समय में, ज्योतिष शास्त्र को विज्ञान और मिथक के मिश्रण के रूप में देखा जाता है। इसके आलोचक इसे अवैज्ञानिक मानते हैं, जबकि इसके समर्थक इसे अनुभवजन्य ज्ञान और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में अपनाते हैं।

1. **आधुनिक अनुसंधान**-खगोल विज्ञान और ज्योतिष में कई समानताएँ हैं, जो इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मूल्यवान बनाती हैं।
2. **व्यावसायिक क्षेत्र**-कुंडली, वास्तु, और ज्योतिषीय परामर्श आधुनिक समाज में लोकप्रिय हैं।
3. **मनौवैज्ञानिक प्रभाव**-यह शास्त्र व्यक्तियों को मानसिक शांति और दिशा प्रदान करता है।

चुनौतियाँ और समाधान : ज्योतिष शास्त्र को प्रामाणिकता और वैज्ञानिकता के आधार पर चुनौती दी जाती है। इसका समाधान इसे साक्ष्यों और आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़कर प्रस्तुत करना है।

1. **शोध और प्रमाण**–पुरानी पद्धतियों का वैज्ञानिक अध्ययन।

2. **आधुनिक तकनीक का उपयोग**–डिजिटल उपकरणों और सॉफ्टवेयर के माध्यम में ज्योतिषीय गणनाएँ।

निष्कर्ष : ज्योतिष शास्त्र भारतीय ज्ञान परंपरा का अनमोल हिस्सा है। यह शास्त्र न केवल भारत की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है. बल्कि यह मानवीय जीवन को समझने और दिशा प्रदान करने का माध्यम भी है। आधुनिक ममय में इसके महत्व को पुनः स्थापित करने के लिए इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नवीन तकनीकों के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

संदर्भ :

1. वैदिक साहित्य ऋग्वेद, यजुर्वेद
2. 'ज्योतिष का इतिहास' भारतीय खगोल विज्ञान पर शोध
3. आधुनिक ज्योतिषीय ग्रंथ और सॉफ्टवेयर विश्लेषण
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास डॉ. उमाशंकर शर्मा संस्कृत साहित्य की रूपरेखा चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार व्यास।
5. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास डॉ. सूर्यकान्त संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास इतिहास – सुशील कुमार डे, संस्कृत साहित्य का इतिहास आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास डॉ. भगवतशरण उपाध्याय डॉ. कपिलदेव दिवेदी, संस्कृत काव्यशास्त्र का
6. ज्योतिष शास्त्र का इतिहास लोकमणि दहाल भारतीय ज्योतिष–शंकरबालकृष्णदीक्षित नेमिचन्द शास्त्री।
7. लघुजातक डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय बृहज्जातकम् डॉ. सत्येन्द्र मिश्र सुलभ ज्योतिष ज्ञान पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे
   क) सिद्धान्तशिरोमणि' मूल लेखक भास्कराचार्य, टीकाकार आचार्य सत्यदेव शर्मा, प्रकाशक चैखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
   ख) महात्मा लगध, टीकाकार आचार्य कौण्डिण्यायनप्रकाशक स्थान चैखम्भा वाराणसी। ख) वेदांग ज्योतिष' मूल लेखक
   ग) सूर्यसिद्धान्त टिका प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय, आचार्य कपीलेश्वर शास्त्री, प्रकाशक वैखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
   घ) भारतीय ज्योतिष आचार्य शंकरबालकृष्ण दीक्षित।
8. https://rashtriyashiksha.com/indian-knowledge-tradition-and-national-education-policy/

सहायक प्राध्यापक,

बुद्धा कॉलेज ऑफ हायर एजुकेशन, करनाल

आलेख

स्वामी विवेकानन्द उवाच

-डॉ. राजेन्द्र टोकी

हमारी जाति ने अपनी विशेषता गंवा दी है, इसी कारण भारत में इतने दु:ख और कष्ट हैं। अब हमें वह उपाय करना है जिससे कि उस जातीय विशेषता का विकास हो। इसके लिए हमें नीच जातियों को उठाना होगा। हिन्दू-मुसलमान और क्रिस्तान सभी ने उन्हें पैरों तले कुचल डाला है। अब उन्हें उठाने की जो शक्ति है वह अपने भीतर लानी होगी-असली हिन्दुओं को यह काम करना पड़ेगा। संसार में जहाँ भी जो कुछ दोष देखे जाते हैं वे न तो उन देशों के हैं और न वहाँ पर माने जाने वाले धर्म के; उन दोषों की उत्पत्ति इसलिए हुई है कि धर्म का यथार्थ रीति से पालन नहीं किया गया। फलत: धर्म का कुछ भी दोष नहीं, दोष मनुष्य का ही है।

क्या पोथियाँ पढ़ लेना ही शिक्षा है? नहीं, तो क्या अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने का नाम शिक्षा है? नहीं। जिसकी सहायता से इच्छाशक्ति का वेग और स्फूर्ति अपने वश में हो जाए और जिससे मनोरथ सफल हो सके, वही शिक्षा है।

मस्तिष्क में अनेक तरह का ज्ञान भर लेना, उससे कुछ काम न लेना और जन्म-भर वाद-विवाद करते रहने का नाम शिक्षा नहीं है, अच्छे आदर्श और अच्छे भावों को काम में लाकर लाभ उठाना चाहिए, जिनसे वास्तविक मनुष्यत्त्व, चरित्र और जीवन बन सके।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली मनुष्यत्व की शिक्षा नहीं देती, गठन नहीं करती; वह तो एक बनी बनाई चीज को तोड़ना-फोड़ना जानती है। ऐसी अनवस्थामूलक अथवा अस्थिरता का प्रचार करने वाली शिक्षा अथवा वह शिक्षा, जो केवल 'नेति' भाव से ही फैलाती है. किसी काम को नहीं है। वह तो मौत से भी भयंकर है।

हमें अपने देश की आध्यात्मिक शिक्षा और सभी प्रकार की ऐहिक शिक्षा अपने हाथ में लेनी होगी और उस शिक्षा में भारतीय शिक्षा की सनातन गति स्थिर रखनी होगी। साथ ही सनातन प्रणाली को यथासम्भव ग्रहण करना पड़ेगा।

कुछ इम्तहान पास कर लेना अथवा धुआँधार व्याख्यान देने की शक्ति प्राप्त कर लेना शिक्षित हो जाना नहीं कहलाता। जिस विद्या के बल से जनता को जीवन संग्राम के लिए समर्थ नहीं किया जा सकता, जिसकी सहायता से मनुष्य का चरित्र-बल परोपकार में तत्पर और सिंह का-सा साहसी नहीं किया जा सकता, क्या वह शिक्षा है? शिक्षा तो वही है जो मनुष्य को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाती है।

हमें ऐसा उपाय करना होगा जिससे हमारे युवकों को वेदों, अनेक दर्शनों और भाष्य-ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त हो; साथ ही अन्याय अवैदिक धर्मों के तत्त्व भी उन्हें समझा दिए जाएँ ताकि उन्हें घर का ज्ञान हो जाए और वे बाहर की बातों से भी अपरिचित न रहें।

देश के सर्वसाधारणों का अपमान करना ही हमारा प्रबल जातीय पाप है और यही हमारी अवनति का एक कारण है। जब तक भारत की जनता उत्तम रूप से शिक्षित नहीं होती, जब तक उसे खाने को अच्छी खुराक भरपेट नहीं मिलता और तन ढकने को वस्त्र नहीं मिलते तथा जब तक कुलीन एवं बड़े आदमी भली-भाँति उनकी संभाल नहीं करते, तब तक राजनीति का कितना ही आन्दोलन क्यों न किया जाए, कुछ भी फल न होगा। यदि हमें सचमुच भारत का पुनरुद्धार करने की इच्छा है तो हमें जनता के लिए अवश्य ही काम करना होगा।

यूरोप से भारत को बाहरी प्रकृति को जय करना सीखना पड़ेगा और भारत से यूरोप को अन्त:प्रकृक्ति पर जय करना। फिर हिन्दू और यूरोपीय का कोई टंटा न रहेगा। दोनों प्रकृक्तियों की जय करने वाला एक आदर्श मनुष्य-समाज बन जाएगा। हमने मनुष्यत्व के एक सिरे को और उन्होंने दूसरे सिरे को विकसित किया है। इन दोनों के मिलन की जरूरत है। मुक्ति जो हमारे धर्म का मूल मन्त्र है, उसका वास्तविक अर्थ ही है दैहिक, मानसिक, आध्यात्मिक सभी तरह की स्वाधीनता।

किसी विषय में मन को चारों ओर से खींचकर लगाने का नाम ध्यान है। एकाग्र करने की शक्ति आ जाने से फिर चाहे जिस विषय में मन को एकाग्र किया जा सकता है।

सच्चे धर्म के क्षेत्र में कोरे पुस्तकीय ज्ञान का कोई स्थान नहीं।

पैसे वालों की पूजा का प्रवेश होते ही धार्मिक सम्प्रदाय का पतन आरम्भ हो जाता है।

'सामाजिक प्रगति' शब्द का उतना ही अर्थ है, जितना 'गर्म बर्फ' या ' अँधेरा प्रकाश'। अन्ततः 'सामाजिक प्रगति' जैसी कोई चीज़ नहीं।

परोपकार ही धर्म है. परपीड़न ही पाप है। शक्ति और पौरुष पुण्य है, कमजोरी और कायरता पाप। स्वतन्त्रता पुण्य है, पराधीनता पाप। परमात्मा में और अपने आपमें विश्वास पुष्य है; सन्देह ही पाप है। एकता का ध्यान पुण्य है; अनेकता देखना ही पाप है। विभिन्न शास्त्र केवल पुण्य प्राप्ति के ही साधन बताते हैं।

जब भारत का सच्चा इतिहास लिखा जाएगा, तब यह सिद्ध होगा कि धर्म के विषय में और ललित कलाओं में भारत सारे विश्व का प्रथम गुरु है।

ज्ञान मनुष्य में स्वभाव-सिद्ध है, कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता; सब अन्दर ही है। हम जो कहते हैं कि मनुष्य 'जानता' है, यथार्थ में, मानसशास्त्र-संगत भाषा में, हमें कहना चाहिए कि वह 'आविष्कार करता' है, 'अनावृत' या 'प्रकट' करता है। मनुष्य जो कुछ 'सोखता' है, वह वास्तव में 'आविष्कार करना' ही है।' आविष्कार' का अर्थ है-मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञानस्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण को हटा लेना। हम कहते हैं कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार किया। तो क्या वह आविष्कार कहीं एक कोने में न्यूटन की राह देखते बैठा था? नहीं, वह उसके मन में ही था। जब समय आया, तो उसने उसे जान लिया या ढूँढ़ निकाला। संसार को जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सब मन से ही निकाला है। विश्व का असीम ज्ञानभाण्डार स्वयं तुम्हारे मन में है। बाहरी संसार तो एक सुझाव, एक प्रेरक मात्र है, जो तुम्हें अपने ही मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। सेव के गिरने से न्यूटन को कुछ सूझ पड़ा और उसने अपने मन का अध्ययन किया। उसने अपने मन में विचार की पुरानी कड़ियों को फिर से व्यवस्थित किया और उसमें एक नयी कड़ी को देख पाया, जिसे हम गुरुत्वाकर्षण का नियम कहते हैं। वह न तो सेव में था और न पृथ्वी के केन्द्रस्थ किसी वस्तु में।

शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूंस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना यहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है, जो जीवन-निर्माण, 'मनुष्य' निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हों। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े सन्त हो जाते और विश्वकोष महान् ऋषि बन जाते !

सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य' निर्माण ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस प्रक्रिया से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदाय बन सके, उसी का नाम है शिक्षा। आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियों और फौलाद के स्नायु-दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिए समुद्र तल में ही क्यों न जाना पड़े-साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े। हम 'मनुष्य' बनाने वाला धर्म ही चाहते हैं। हम 'मनुष्य' बनाने वाला सिद्धान्त ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं।

नब्बे प्रतिशत विचारशक्ति को साधारण मनुष्य व्यर्थ खो देता है और इसी कारण वह सदा बड़ी-बड़ी भूले किया करता है। अभ्यस्त मन कभी भूल नहीं करता। मनुष्यों और पशुओं में मुख्य भेद केवल चित्त की एकाग्रता-शक्ति का तारतम्य ही है। पशु में एकाग्रता की शक्ति बहुत कम होती है। जिन्होंने पशुओं को सिखाने का काम लिया है, वे इस कठिनाई का अनुभव करते हैं कि पशु को जो कुछ सिखाया जाता है, उसे वह सदा भूल जाया करता है। पशु अपना मन अधिक समय तक किसी बात पर स्थिर नहीं रख सकता। बस यहीं पर मनुष्यों और पशुओं में अन्तर है। मनुष्य-मनुष्य का भेद भी उनकी एकाग्रता-शक्ति के इस तारतम्य से होता है। सबसे निम्न मनुष्य की उच्चतम पुरुष के साथ तुलना करो। उन दोनों में भेद केवल एकाग्रता की मात्रा में है।

यह एक बात अच्छी तरह समझ लो कि जो मनुष्य दिन-रात सोचता रहता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, उससे हम कोई आशा नहीं रख सकते। यदि कोई दिन रात यही सोचता रहे कि मैं दोन-हीन हूँ, नाचीज हैं, तो वह सचमुच नाचीज बन जाएगा। अगर तुम सोचो कि मैं कुछ हूँ, मुझमें शक्ति है, तो सचमुच तुममें शक्ति आ जाएगी। यह एक महान् सत्य है जिसका तुम्हें स्मरण रहना चाहिए। हम उस सर्वशक्तिमान प्रभु की सन्तान हैं-उस अनन्त ब्रह्माग्नि की चिन्गारियों हैं। हम नाचीज़ कैसे हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं. सब कुछ करने को तैयार हैं और सब कुछ कर सकते हैं। हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था। इसी आत्मविश्वासरूपी प्रेरणा शक्ति ने उन्हें सभ्यता की ऊँची-से-ऊँची सीढ़ी पर बढ़ाया था। और अब यदि अवनति हई है, यदि कोई दोष आ गया है, तो तुम देखोगे, इस अवनति

का आरम्भ उसी दिन से हो गया, जब से हम अपने इस आत्मविश्वास को खो बैठे।

इस श्रद्धा या आत्मविश्वास के सिद्धान्त का प्रचार करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। मैं इस बात को दुबारा कहता हूँ कि यह आत्मविश्वास मानवता का एक सबसे शक्तिशाली अंग है। पहले अपने आपमें विश्वास रखो। यह जान लो कि भले ही एक व्यक्ति छोटा-सा बुलबुला हो और दूसरा पर्वत के समान ऊँची तरंग, पर बुलबुले और तरंग दोनों के ही पीछे वही अनन्त सागर है। वही अनन्त सागर मेरा और तुम्हारा दोनों का आधार है। जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता का वह अनन्त महासागर जैसा मेरा है, वैसा ही तुम्हारा भी। अत: हे भाइयो। तुम अपनी सन्तानों को उनके जन्म काल से ही इस महान, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना शुरू कर दो।

मन को यदि झील की उपमा दी जाए, तो उसमें उठने वाली प्रत्येक लहर, प्रत्येक तरंग जब दब जाती है, तो वास्तव में वह बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाती, वरन् चित्त में एक प्रकार का चिह्न छोड़ जाती है तथा ऐसी सम्भावना का निर्माण कर जाती है, जिससे वह लहर दुबारा फिर से उठ सकें। हमारा प्रत्येक कार्य, हमारा प्रत्येक अंग-संचालन, हमारा प्रत्येक विचार हमारे चित्त पर इसी प्रकार का एक संस्कार छोड़ जाता है; और यद्यपि ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हों, तथापि ये अज्ञात रूप से अन्दर-ही-अन्दर कार्य करने में विशेष प्रबल होते हैं। हम प्रति मुहूर्त जो कुछ हैं, वह इन संस्कारों के समुदाय द्वारा ही नियमित होता है। प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों की समष्टि द्वारा ही नियमित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है; और यदि अशुभ संस्कारों का, तो बुरा। यदि कोई मनुष्य निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहे, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे कर्म करता रहे, तो उसका मन भी बुरे संस्कारों से पूर्ण हो जाएगा और बिना उसके जाने ही वे संस्कार उसके समस्त विचारों तथा कार्यों पर अपना प्रभाव डाल देंगे। असल में ये बुरे संस्कार निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं। ये संस्कार उसमें दुष्कर्म करने की प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न कर देंगे। वह तो इन संस्कारों के हाथ एक वन्त्र-सा हो जाएगा।

सभी बुराइयों का कारण हमीं में है। किसी दैवी (अतिप्राकृत) व्यक्ति को दोष मत दो। न तो निराश या विषण्ण होओ और न यही सोचो कि हम ऐसी अवस्था में पड़े हैं, जहाँ से हम कभी छुटकारा नहीं पा सकते, जब तक कि कोई आकर हमें अपने हाथ का सहारा नहीं देता। हम रेशम के कीड़े के समान हैं। हम अपने आपमें से ही सूत निकालकर कोष का निर्माण करते हैं और कुछ समय के बाद उसी के भीतर कैद हो जाते हैं। कर्म का यह जाल हमीं ने अपने चारों ओर बुन रखा है। अपने अज्ञान के कारण हमें यह प्रतीत होता है कि हम बद्ध हैं, और इसलिए सहायता के लिए हम रोते-चिल्लाते हैं। पर सहायता कहीं बाहर से तो नहीं आती; वह तो हमारे भीतर से ही आती है। चाहो तो विश्व के समस्त देवताओं को पुकारते रहो, मैं भी बरसों पुकारता रहा और अन्त में देखा कि मुझे सहायता मिल रही है। पर वह सहायता मिली भीतर से। भ्रान्तिवश इतने दिन तक जो अनेक प्रकार के काम करता रहा, उस भ्रान्ति को मुझे दूर करना पड़ा। अपने चारों ओर मैंने जो जाल फेंक रखा था, उसे मुझे काट डालना पड़ा। मैंने अपने जीवन में अनेक गलतियाँ की हैं। पर यह स्मरण रहे कि उन गलतियों के बिना मैं आज जो हूँ, वह नहीं रहता। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि तुम घर जाओ, और जानबूझकर गलतियाँ करो; मेरे कहने का उस प्रकार उलटा अर्थ मत लगाओ। पर जो गलतियाँ तुम कर चुके हो, उनके कारण हताश मत होओ।

हम क्यों ग़लतियाँ करते हैं? इसलिए कि हम दुर्बल हैं। हम दुर्बल क्यों हैं? इसलिए कि हम अज्ञानी हैं। हमें अज्ञानी कौन बनाता है? हम स्वयं ही। हम अपनी आँखों को अपने हाथों से तक लेते हैं और 'अँधेरा है' 'अँधेरा है' कहकर रोते हैं। हाथ हटा लो, तो प्रकाश ही प्रकाश है। मनुष्य की आत्मा स्वभाव से ही स्वयंप्रकाश है। अत: हमारे लिए प्रकाश का अस्तित्व सदा ही है। आधुनिक वैज्ञानिक लोग क्या कहते हैं, क्या तुम नहीं सुनते ? क्रमविकास का कारण क्या है-इच्छा। जीवधारी कुछ करना चाहता है, परन्तु परिस्थिति को अनुकूल नहीं पाता, इसलिए नये शरीर का निर्माण कर लेता है। यह कौन निर्माण करता है? स्वयं वही जीवधारी, उसकी इच्छाशक्ति। अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते रहो और वही तुम्हें ऊपर उठाती जाएगी। इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। तुम पूछ सकते हो, यदि वह सचमुच सर्वशक्तिमान है, तो फिर मैं सब कुछ क्यों नहीं कर सकता ? पर तुम तो केवल अपनी क्षुद्र आत्मा के सम्बन्ध में सोच रहे हो। अपनी निम्नतम जीवाणु (amoeba) की अवस्था से लेकर मनुष्य-शरीर तक इस सारी जीवन श्रृंखला पर नजर डालो। यह सब किसने बनाया ? स्वयं तुम्हारी इच्छाशक्ति ने। क्या तुम उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अस्वीकार कर सकते हो? जिसने तुम्हें इतने ऊँचे तक उठाया, वह तुम्हें और भी ऊँचा ले जा सकती है। आवश्यकता है चारित्यं की, इच्छाशक्ति को सबल बनाने की।

सम्पूर्ण शिक्षा तथा समस्त अध्ययन का एकमेव उद्देश्य है इस व्यक्तित्व को गढ़ना। परन्तु हम यह न करके केवल बहिरंग पर ही पानी चढ़ाने का सदा प्रयत्न किया करते हैं। जहाँ व्यक्तित्व का ही अभाव है, वहाँ सिर्फ बहिरंग पर पानी चढ़ाने का प्रयत्न करने से क्या लाभ ? सारी शिक्षा का ध्येय है मनुष्य का विकास। वह अन्तर्मानव-वह व्यक्तित्व, जो अपना प्रभाव सब पर डालता है, जो अपने संगियों

पर जादू सा कर देता है, शक्ति का एक महान् केन्द्र हैं, और जब यह शक्तिशाली अन्तर्मानव तैयार हो जाता है, तो वह जो चाहे कर सकता है। यह व्यक्तित्व जिस वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है, उसी वस्तु को कार्यशील बना देता है।

अपने जीवन में मैंने जो श्रेष्ठतम पाठ पढ़े हैं, उनमें एक यह है कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके साध्य के विषय में। जिनसे मैंने यह बात सीखी, वे एक महापुरुष थे। यह महान् सत्य स्वयं उनके जीवन में प्रत्यक्ष रूप में परिणत हुआ था। इस एक सत्य से मैं सर्वदा बड़े-बड़े पाठ सीखता आया हूँ। और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्त्व में है-साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना साध्य की ओर।

हमारे जीवन में एक बड़ा दोष यह है कि हम आदर्श से ही इतना अधिक आकृष्ट रहते हैं, लक्ष्य हमारे लिए इतना अधिक आकर्षक होता है, ऐसा मोहक होता है और हमारे मानस क्षितिज पर इतना विशाल बन जाता है कि बारीकियाँ हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। लेकिन कभी असफलता मिलने पर हम यदि बारीकी से उसकी दानबीन करें, तो निन्यानवे प्रतिशत यही पाएँगे कि उसका कारण था हमारा साधनों की ओर ध्यान न देना। हमें आवश्यकता है अपने साधनों को पुष्ट करने की और उन्हें पूर्ण बनाने की। यदि हमारे साधन बिल्कुल ठीक हैं, तो साध्य की प्राप्ति होगी ही। हम यह भूल जाते हैं कि कारण ही कार्य का जन्मदाता है, कार्य स्वत: उत्पन्न नहीं हो सकता, और जब तक कारण अभीष्ट, समुचित और सशक्त न हो, कार्य की उत्पत्ति नहीं होगी। एक बार हमने ध्येय निश्चित कर लिया और उसके साधन पक्के कर लिये कि फिर हम ध्येय को लगभग छोड़ सकते हैं, क्योंकि हम विश्वस्त हैं कि यदि साधन पूर्ण हैं, तो साध्य तो प्राप्त ही होगा। जब कारण विद्यमान है, तो कार्य की उत्पत्ति होगी ही। उसके बारे में विशेष चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कारण के विषय में हम सावधान रहें तो कार्य स्वयं सम्पन्न हो जाएगा। कार्य है ध्येय की सिद्धि और कारण है साधन। इसलिए साधन की ओर ध्यान देते रहना जीवन का एक बड़ा रहस्य है। गीता में भी हमने यही पढ़ा और सीखा है कि हमें लगातार भरसक काम करते ही जाना चाहिए; काम चाहे जैसा भी हो, अपना पूरा मन उस ओर लगा देना चाहिए; पर साथ ही ध्यान रहे, हम उसमें आसक्त न हो जाएँ। अर्थात, कार्य से किसी भी विषय द्वारा हमारा ध्यान न हटे, फिर भी हममें यह शक्ति हो कि हम इच्छानुसार कार्य को छोड़ सकें।

यदि हम अपने जीवन का विश्लेषण करें तो हम देखेंगे कि दु:ख का सबसे बड़ा हेतु यह हैं हम कोई बात हाथ में लेते हैं और अपनी पूरी ताकत उसमें लगा देते हैं; उसमें असफलता होती है, पर फिर भी हम उसका त्याग नहीं कर सकते। यह आसक्ति ही हमारे दु:ख का सबसे बड़ा कारण है। हम जानते हैं कि वह हमें हानि पहुँचा रही है और उसमें चिपके रहने से केवल दु:ख ही हाथ आएगा, परन्तु फिर भी हम उससे अपना छुटकारा नहीं कर सकते। मधुमक्खी तो शहद चाटने आयी थी, पर उसके पैर चिपक गये उस मधुचषक से और वह छुटकारा नहीं पा सकी। बार-बार हम अपनी यही स्थिति अनुभव करते हैं। यही हमारे अस्तित्व का सम्पूर्ण रहस्य है। हम यहाँ आये थे मधु पीने, पर हम देखते हैं हमारे हाथ-पाँव उसमें फँस गये हैं। आये थे पकड़ने के लिए, पर स्वयं ही पकड़े गये! आये थे उपभोग के लिए, पर खुद ही उपभोग्य बन बैठे! आये थे हुकूमत करने, पर हम पर ही हुकूमत होने लगी। आये थे कुछ काम करने, पर देखते हैं कि हमसे ही काम लिया जा रहा है। हर घड़ी यही अनुभव होता है। हमारे जीवन की छोटी-छोटी बातों का भी यही हाल है। दूसरों के मन हम पर हुकूमत चला रहे हैं और हम सदा यही प्रयत्न कर रहे हैं कि हमारी हुकूमत दूसरों के मनों पर चले। हम जीवन के आनन्द का उपभोग करना चाहते हैं, पर वे भोग हमारे प्राणों का ही भक्षण कर जाते हैं। हम प्रकृति से सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं, पर अन्तत: हम यही देखते हैं कि प्रकृक्ति ने हमारा सर्वस्व हरण कर लिया है, उसने हमें पूरी तौर से चूसकर अलग फेंक दिया है।

इस सारी शिक्षा का सार यही है कि तुम्हें एक 'स्वामी' के समान कार्य करना चाहिए, न कि एक दास की तरह। कर्म तो निरन्तर करते रहो, परनतु एक दास के समान मत करो। सब लोग किस प्रकार कर्म कर रहे हैं, क्या यह तुम नहीं देखते ? इच्छा होने पर भी कोई आराम नहीं ले सकता! ९९ प्रतिशत लोग तो दासों की तरह कार्य करते रहते हैं और उसका फल होता है दु:ख, ये सब कार्य स्वार्थ पर होते हैं। मुक्तभाव से कर्म करो, प्रेम सहित कर्म करो। प्रेम शब्द का यथार्थ अर्थ समझना बहुत कठिन है। बिना स्वाधीनता के प्रेम आ ही नहीं सकता। दास में सच्चा प्रेम होना सम्भव नहीं। यदि तुम एक गुलाम मोल ले लो और उसे जंजीरों से बाँधकर उससे अपने लिए कार्य कराओ, तो वह कष्ट उठाकर किसी प्रकार कार्य करेगा अवश्य, पर उसमें किसी प्रकार का प्रेम नहीं रहेगा। इसी तरह जब हम संसार के लिए दासवत् कर्म करते हैं, तो उसके प्रति हमारा प्रेम नहीं रहता और इसलिए वह सच्चा कर्म नहीं हो सकता। हम अपने बन्धु-बान्धवों के लिए जो कर्म करते हैं, यहाँ तक कि हम अपने स्वयं के लिए भी जो कर्म करते हैं, उसके बारे में भी ठीक यही बात है।

स्वार्थ के लिए किया गया कार्य दास का कार्य है। और कोई कार्य स्वार्थ के लिए है अथवा नहीं, इसकी पहचान यह है कि प्रेम

के साथ किया हुआ प्रत्येक कार्य आनन्ददायक होता है। सच्चे प्रेम के साथ किया हुआ कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जिसके फलस्वरूप शान्ति और आनन्द न आये। प्रकृत सत्ता, प्रकृत ज्ञान तथा प्रकृत प्रेम ये तीनों चिरकाल के लिए परस्पर सम्बद्ध है। असल में ये एक ही में तीन हैं। जहाँ एक रहता है, वहाँ शेष दो भी अवश्य रहते हैं। ये उस अद्वितीय सच्चिदानन्द के ही त्रिविध रूप हैं। जब वह सत्ता शान्त तथा सापेक्ष रूप में प्रतीत होती है, तो हम उसे विश्व के रूप में देखते हैं। वह जान भी सांसारिक वस्तुविषयक ज्ञान के रूप में परिपत हो जाता है, तथा वह आनन्द मानव हृदय में विद्यमान समस्त प्रकृत प्रेम की नींव हो जाता है। अतएव मच्चे प्रेम से प्रेमी अथवा उसक प्रेम-पात्र को भी कष्ट नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, मान लो एक मनुष्य एक स्त्री से प्रेम करता है। वह चाहता है कि यह स्त्री कवल उसी के पास रहे: अन्य पुरुषों के प्रति उस स्त्री के प्रत्येक व्यवहार से उसमें ईर्ष्या का उद्रेक होता है। यह चाहता है कि यह स्त्री उगी के पास बैठे, उसी के पास खड़ी रहे तथा उसी की इच्छानुसार खाये पिये और चले-फिरे। वह स्वयं उस स्त्री का गुलाम हो गया है और चाहता है कि वह स्त्री भी उसकी गुलाम होकर रहे। यह तो प्रेम नहीं है। यह तो गुलामी का एक प्रकार का विक्कृत भाव है, जो ऊपर से प्रेम जैसा दिखाई देता है। यह प्रेम नहीं हो सकता, क्योंकि यह क्लेशदायक है। यदि वह उस मनुष्य को इच्छानुसार न चले, तो उससे उस मनुष्य को कष्ट होता है। वास्तव में सच्चे प्रेम की प्रतिक्रिया दु:खप्रद तो होती ही नहीं। उससे तो केवल आनन्द ही होता है। और यदि उससे ऐसा न होता हो, तो समझ लेना चाहिए कि वह प्रेम नहीं है, बल्कि वह और ही कोई चीज है, जिसे हम भ्रमवश प्रेम कहते हैं। जब तुम अपने पति, अपनी स्त्री, अपने बच्चों, यहाँ तक कि समस्त विश्व को इस प्रकार प्रेम करने में सफल हो सकोगे कि उससे किसी भी प्रकार दु:ख, ईर्ष्या अथवा स्वार्थपरता रूप कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी, केवल तभी तुम ठीक-ठीक अनासक्त हो सकोगे।

जब तुम अपने बच्चों को कोई चीज़ देते हो, तो क्या उसके बदले में उनसे कुछ माँगते हो? यह तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उनके लिए काम करो, और बस वहीं पर बात खत्म हो जाती है। इसी प्रकार, किसी दूसरे पुरुष, किसी नगर अथवा देश के लिए तुम जो कुछ करो, उसके प्रति भी वैसा ही भाव रखो; उनसे किसी प्रकार के बदले की आशा न रखो। यदि तुम सदैव ऐसा ही भाव रख सको कि तुम केवल दाता ही हो, जो कुछ तुम देते हो, उससे तुम किसी प्रकार के प्रत्युपकार की आशा नहीं रखते, तो उस कर्म से तुम्हें किसी प्रकार की आसक्ति नहीं होगी। आसक्ति तभी आती है, जब हम बदले की आशा रखते हैं।

शिक्षा का मतलब कुछ शब्द लिखा-पढ़ा देने से नहीं है। शिक्षा तो हमारी वृत्ति और शक्तियों के विकास का नाम है, अथवा शिक्षा से मतलब व्यक्तियों को इस तरह संगठित करने से है जिससे कि उनकी इच्छा सद्विषयों की ओर दौड़े और कार्य भली-भाँति सिद्ध हों। इसी प्रकार की शिक्षा पाने पर हमारे भारत की भलाई करने में समर्थ निडर महिलाओं का अभ्युदय होगा-वे संघमित्रा, लीलावती, अहल्याबाई, मीराबाई और दमयन्ती प्रभृति का पदानुसरण करने में समर्थ होंगी। वे पवित्र, स्वार्थ की छूट से अछूती वीर नारियाँ होंगी-भगवत् के चरण-कमलों का स्पर्श करने से उनमें वीरता का प्रमाण होगा और वे वीरप्रसविनी होने की पात्र होंगी।

जो धर्म, जो ईश्वर विधवाओं के आँसू नहीं पोंछ सकता, अथवा बिना माता-पिता वाले अनाथ के मुँह में रोटी का एक टुकड़ा नहीं दे सकता, उस धर्म अथवा ईश्वर पर मैं विश्वास नहीं करता। मतवाद, मत-मतान्तरों की चर्चा कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसमें कितने ही गम्भीर दार्शनिक तत्व क्यों न भरे हों, जब तक वह मतवाद पुस्तकों में आबद्ध है, तब तक मैं उसे मानता ही नहीं। हमारी आँखें पीठ की ओर नहीं हैं, सामने हैं, अतएव सामने की ओर बढ़ो, और जिस धर्म को तुम अपना समझकर गौरव करते हो उसके उपदेशों को कार्य में परिणत कर दिखाओ।

हिन्दुओं का (आजकल का) धर्म न वेद में है, न पुराण में, न भक्ति में है, न मुक्ति में-धर्म चौके चूल्हे में रह गया है। (मौजूदा) हिन्दू धर्म न विचार-मार्ग में है, न ज्ञान-मार्ग में, छुआछूत में है- 'खबरदार, दूर-दूर, हमें छून लेना', बस, इसी में रह गया है। इस छूत के झमेले में पड़कर जान न दो, 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' क्या सिर्फ पोथी में ही धरा रहेगा? जो मुट्ठी भर अन्न भी गरीब को न दे सकेंगे, वे मुक्ति क्या खाक देंगे। जो दूसरों की हवा लगने से अशुद्ध हो जाते हैं वे औरों को क्या पवित्र करेंगे। छुआछूत एक प्रकार की मानसिक व्याधि है, इससे बचे रहो।

चित्त का शुद्ध होना और दूसरों के भले के लिए उद्योग करना ही सभी प्रकार की उपासनाओं का सार है। शिव की यथार्थ पूजा वे ही लोग करते हैं जो दरिद्र, दुर्बल और रोगी में शिव का दर्शन करते हैं। और जो सिर्फ मूर्ति में ही शिव की पूजा करता है वह निरा प्रवर्तक है। मन्दिर में जाकर नित्य नियम से दर्शन करने वाले भक्त पर भी महादेव जी उतने प्रसन्न नहीं होते जितने उस व्यक्ति पर, जो जाति और धर्म का लिहाज छोड़कर एक भी दरिद्र व्यक्ति की शिव समझकर पूजा करता है।

मनसा वाचा कर्मणा 'जगद्धिताय' बनना पड़ेगा। तुमने पढ़ा है- 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव', मैं कहता हूँ, 'दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव'। दरिद्र, मूर्ख, अज्ञानी और कातर व्यक्ति हो तुम्हारे लिए देवी-देवता हों, उन्हीं की सेवा को तुम परम धर्म समझो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अजीत जावेद, विवेकानन्द की खोज में, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2018
2. ओशो, लाली मेरे लाल की, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण–1996
3. ओशा, भारत एक सनातन यात्रा, डायमंड पॉकेट बुक्सर, दिल्ली, संस्करण–2000
4. के. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पोपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, तीसरा संस्करण–1982
5. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, संस्करण– 1994
6. धर्मपाल, राजस्थान : नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1974
7. प्रहलाद तिवारी, युगप्रर्वतक स्वामी विवेकानन्द कीन बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018
8. भरतकुमार तिवारी, विवेकानन्द का दार्शनिक चिन्तन, भारतीय भाषापीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1988
9. मनोज कुमार इन्सां, विवेकानन्द का शिक्षा–दर्शन साहित्य, चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–2017
10. महेश शर्मा, विवेकानन्द का शैक्षिक दर्शन, विद्या विकास अकेडेमी, नई दिल्ली, संस्करण–2017
11. राजेन्द्रप्रसाद गुप्त, स्वामी विवेकानन्द, ज्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1997
12. राधाकृष्णन्, हमारी विरासत, सरस्वती विहार, दिल्ली, दूसरा संस्करण–1977
13. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल, पटना, संस्करण–1987
14. रोमाँ रीलों, विवेकानन्द, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, बारहवाँ संस्करण–2006
15. शिखा अग्रवाल, स्वामी विवेकानन्द और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, प्रथम संस्करा–2003
16. सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, विवेकानन्द चरित, रामकृष्ण मठ नागपुर, बीसाँ संस्करण–2005
17. सिस्टर निवेदिता, स्वामी विवेकानन्द के साथ भ्रमण, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, संस्करण–2001
18. स्वामी गम्भीरानन्द, युगनायक विवेकानन्द (तोनों भाग), रामकृष्ण मद नागपुर, संस्करण–2004
19. स्वामी विदेहात्मानन्द, स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, प्रथम संस्करण–2002
20. स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य (दस भाग), अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, प्रथम रियायती संस्करण 1989
21. स्वामी सारदानन्द, श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग (दो भाग), रामकृष्ण मठ, नागपुर, बीसवाँ संस्करण 2005
22. हंसराज रहबर, योद्धा संन्यासी विवेकानन्द, राजपाल एंड संज, दिल्ली, संस्करण–2004
23. Encyclopedia of India. Encyclopedia Britanica. New Dehli, Edition-2008
24. R.C. Majumdar (Dr.). Swami Vivekanand, Adviata Ashram. Kolkata, Edition-2004
25. Satish K. Kapoor, Cultural Contact and Fusion : Swami Vivekanand in the West (1993-96), First edition, 1987, ABS Publicaiton,m Jalandhar.
26. Vivekanand Kendra Patrika, volume 21, August, 1992

– नजदीक भीष्म प्रकाश नगर पार्क, पीरखाना रोड, गोकुलपुर
खन्ना–141401 (जिला लुधियाना)

कविता के संवेदन तंत्र के साक्षी : प्रो. डॉ. हरमोहिन्दर सिंह बेदी

कविता के संवेदन तंत्र में साक्षी स्वयं कवि और उसकी कविताएं होती हैं। कवि अपनी संवेदनशील अनुभूति और समाज के यथार्थ को शब्दों में डालकर कविता का सृजन करता है। तो वहीं कविता भी अपनी विशिष्टता के द्वारा पाठ के हृदय में सौन्दर्य, करुणा और जीवन गहन अनुभवों को जाकर संवेदनतंत्र की गवाही देती है। डॉ. बेदी लिखते हैं कि–

''कविता का भी अपना एक घर होता है जैसे मेरा तुम्हारा सबका। घर के बिना मानव की विजय यात्रा को समझा नहीं जा सकता। घर विकास का दर होता है। घर आदमी की पहचान भी होता है और उसके दुख सुख की गाथा भी और भी फिर कविता इसी घर में रहती है. आदमी के सुख दुख की साथी बनकर ।

मुझे कई बार लगता है घर के बिना कविता का कोई अस्तित्व नहीं। घर है, तो कविता है। कविता घर में, घर की अनुभूतियों से परिवार के सदस्यों से भरी पूरी बनती है। बड़े–बड़े रचनाकारों ने घर के बंद दरवाजों के पीछे बैठ कर अमर साहित्य की रचना की है। लेखक का कमरा विश्व संवेदनाओं से भरा होता है। उस कमरे में चांद भी उतर आता है. सूरज की धूप भी इठलाती है और तारों भरा आकाश घर की छत को नए अनुभवों से जीवित कर देता है। यही कविता घर की महिमा है। कवि का घर ऋषि आश्रम होता है। घर की दहलीज पर भी कविताएं उसका इंतजार करती है।।

जगत कृति में कृति की ऐसी अनेक छवियाँ मिलेगी, जिसमे प्रकृति की छटा है उसके साथ संस्कृक्ति के बहु आयामी संदर्भ। सृष्टिकर्ता भी जगत का निर्माण करता है दूसरी तरफ कवि भी अपनी दुनिया की रचना शक्ति को संभव बनाता है। कविता मानव मन की केवल तरंगे ही नहीं होती, वे भौतिक अनुभवों को अभिव्यक्त करने वाली सूक्ष्म संवेदनाएँ होती हैं जो मानव को प्रकृक्ति और संस्कृति के अनुयायी बनाती हैं। जगत की कृति में कवि साँस लेकर अपने मनोभावों को कृति समझ में आलोकित भी करता है। मन के इस क्षितिज की यात्रा को सहज रूप में स्वीकार भी करता है। जगत का कृतित्व गुरु गोबिंद सिंह जैसे महान कर्ताओं की वाणी द्वारा साँसारिक जीवों का कल्याण भी करता है। मेरी काव्य संवेदना इस महान विचार को समर्पित है।

पद्मश्री प्रो. हरमोहिन्दर सिंह बेदी, चांसलर, केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश के दो कविता संग्रह 'कविता घर' (इसमें 69 कविताएं हैं) और 'जगतकृति' (इसमें 72 कविताएं हैं) अभी–अभी प्रकाशित हुई हैं। डॉ. बेदी के कुल 15 काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अपने सभी प्रकाशित कविता संग्रहों को पंजाबी के प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. मनमोहन सिंह को भेंट किया तथा डॉ. कृष्ण गोपाल जी ने उनका लोकार्पण किया।

कविता

घर

–प्रो. हरमोहिंदर सिंह बेदी

कविता से दूर रह
कविता घर नहीं
मन नहीं
तन नहीं
गली का मोड़ नहीं
कविता का अपना घर है
कविता का अपना घर है
कविता की अपनी नजर
अनोखी डगर
सीधी चाल चल
कविता से दूर चल
कविता राह नहीं
गन्तव्य है
मन्तव्य है
संवाद का आत्मा का कविता से डर
म्यान से निकली तलवार है
तेज धार है न परख इसे बार–बार
इसके वार से बच
सुरक्षा कवच ओढ़
वार से बच
कविता की
तेज रफ्तार है
कविता अंग संग चल
कविता
नदी की बहती धार है
कविता आत्म विश्वास है
नदी जल पर तैरती नाव है
तून आर है
न पार है
कविता नदी है
नाव है
तू है
उतर पार
कविता का पकड़ हाथ
कविता ही तेरे साथ है।

125, कबीर पार्क,
गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी के सामने,
अमृतसर–19300 5

पहाड़ से उतरते हुए

–प्रो. हरमोहिंदर सिंह बेदी

पहाड़ से उतरते हुए
उसने अचानक मेरा हाथ थाम लिया
धीरे से बोली
पहाड़ छोड़ते हुए
मुझे डर लगता है पहाड़ पर चढ़ते हुए
मेरे लिए
शिखर चुनौती था
अब पहाड़ को छोड़ते हुए
मन भी डरता है देह भी तन हीन पहाड़ से उतरते हुए
मैं पीछे छूट गई हूँ
न अब उत्साह न उमंग
भले पहाड़ वरदान होता है
पहाड़ की चढ़ाई
जादू से भरी
पहाड़ से उतरना
दुख की खाई
पांव नहीं टिकते उखड़ उखड़ जाते हैं
पहाड़ पर चढ़ना
संयोग
उतरना पहाड़ से वियोग
संयोग और वियोग के बीच खड़े है पहाड़

नदी में तैरती नदी
दुबारा क्या देखता
नदी में तैरती थी नदी
जल लहरे टकराती
जल में नदी
नदी में जल
नदी में नदी तैरती देख भी लेता मुड़कर
वहाँ दृश्य
वही कल कल नदी नदी में उतर गई
जल जल में
कल कल के विलीन हुआ
नदी तैरती रही नदी में फिर से देखने को मन था
कैसे
नदी में नदी तैरती है
डर था दुबारा सामना होने पर नदी जड़ न हो जाए
जल पानी बन ठहर न जाए
कहां दोहराता है दृश्य खुद को वह क्षण में ही
देह में न रहकर
अपनी ही छवि में हो जाता है गैर हाजिर
नदी मेरी उपस्थिति से मुनकर हो गई
दुबारा सामना होने पर

125, कबीर पार्क,
गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी के सामने,
अमृतसर–19300 5

महकते गुलाब की याद में

-डॉ. राज शर्मा

आओ
कुछ कहें सुने....
महकते गुलाब की याद में
विश्व-शांति व मैत्री के मसीहा
नेहरू की याद में।
जिसकी अचकन की बटन होल में
टंका महकता लाल गुलाब-
क्रान्ति-कामिता
- प्रगति-गामिता का
प्रतीक पहले था
खुशबू और शोभा का बाद में
आओ कुछ कहें सुनें महकते गुलाब की याद में।
मोती का लाल जवाहर
कमला का सुहाग-
इन्दु का प्रकाशक
राजीव का विकासक
बच्चों का चाचा
लाल भारत माँ का
अमन का अलम्बरदार
आजादी का पहरेदार
महामानव था पहले
राष्ट्र-नायक बाद में
आओं ! कुछ कहें सुने महकते गुलाब की याद में

स्वप्नदर्शी और रोमानी
कवि-हृदय, वक्ता लासानी
भावुक किंतु अनुशासन प्रिय
पूर्ण विश्व में अति लोकप्रिय
जिसका एक ही नारा था
राष्ट्र प्रथम और मैं बाद में
आओ । कुछ कहे सुने महकते गुलाब की याद में।
नूतन और पुरातन का अभिनव संगम
ज्ञान-विज्ञान
सभी कुछ कर हृदयंगम
कर्म-कौशल को बनाया जीवन का मर्म
राष्ट्रहित जिसके लिए था स्वयं सिद्ध धर्म काम ही धर्म है
काम ही है राम
आराम है हराम
ताउम्र जो खुद रहा इस सत्य की मर्याद में
आओ। कुछ कहे सुने महकते गुलाब की याद में।
मानवीय गरिमा का आदर करने वाला
पंचशील का मंत्र विश्व में भरने वाला
अमन का हामी, वतन-परस्त
मानवता के हित में व्यस्त
बसता है जो आज भी
हर भारतीय की याद में
आओ! कुछ कहे सुने महकते गुलाब की याद में।

एम-3, एमआईजी फ्लैट्स,
जे.पी. नगर, जालंधर (पंजाब)

रूह पर लिखी तहरीर

-डॉ. सुरेश नायक

रहस्य ही तो है
न जान पाया मन
कि किसलिए मिला यह जीवन
बंध जाते किस तरह आपस के बन्धन
कि कैसे आती है कविता
कौन गढ़ता शब्द
और करता अलंकरण
जान न सकोगे कितने होंगे सितारे आसमान में
फूल कैसे भर लाते सुगन्ध
कैसे भरते पंछी
उड़ान निर्बन्ध
कहाँ से आती
और कहाँ जाती है पवन
स्वयंमेव किस भाँति हो रहा
पलकों का नर्तन
रक्त-संचरण
साँसों का आवागमन
दिल की भी यह धड़कन

क्या यह सब आवरण के उस ओर है
जहाँ कृतित्व का वास्तविक छोर है
क्यों लगता है किसी-किसी से जन्मों का नाता
और कोई प्रथम दर्शन में ही नहीं सुहाता
कुछ तो है
पर जो भी है
वह जानने जैसा नहीं
मानने जैसा भी नहीं
जैसे जीवन को जाना नहीं जा सकता
बस जिया जाता है
जैसे प्रेम का ढाई आखर महसूस होता है
पोथी से नहीं आता है
बस वैसा ही जीवन है
वैसी ही कविता है
रूह पर लिखी तहरीर जैसी
जो बांचेगा
जी लेगा।

सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, पी एम एन कॉलेज, राजपुरा
#1359, अर्बन एस्टेट, फेज़-II, पटियाला

प्रेम एक अध्यात्म नदी-पाँच दृश्य

-अवधेश सिंह

1. प्रेम समझना जितना सरल है
उतना ही कठिन है
प्रेम व्यक्त करना
अक्सर अनुभूति और भाव को
सामने रखने के लिए
शब्दों का टोटा हो जाता है
अलाव तो जलते हैं दिल में
कोई बात लेकिन, बाहर नहीं आती है
होठों पर बर्फ-सी जमा हो जाती है

प्रेम को प्राप्त करना
जितना सहज है
उतना ही दुरूह है
उसे वापस कर पाना
यदि कर सको तो कर के देखना
पेड़ों को वापस उसकी छाँव
चांद को उसकी शीतलता.....
फूल को उसकी सुगंध...... ।

2. प्रेम भावनाओं का ज्वार है
तेज बहाव के सैलाब में
रेत में कदम
डगमगाते ही निश्चित है बह जाना .....
कोई पीछे मुड़ कर नहीं देखता
वापसी के सारे रास्तो में ताले पड़े हो
और चाभी खो जाये तो .....
निर्भीक बेखौफ तेज बहाव की
मौसमी नदी रुकती है भला
बरसाती नदी को रोक के तो देखो
प्रेम का मौसम आता है
रेगिस्तान में भी फूल खिल जाते हैं...।

3. प्रेम को जीना जितना सुखद है
उतना ही दुखपूर्ण है
बिना प्रेम का जीवन
प्रेम वियोग : प्रेम प्रतीक्षा के
शब्द रहित अनंत वृत्तांत सभी ने सुने हैं
और भोगे भी तभी तो
'राजा ने महल छोड़ा और तपस्वी ने कमंडल'
मैं मान कर चलता हूँ
'राम वन गमन' का एक मात्र कारण
शबरी का राम के प्रति अगाध प्रेम था
महल से वन तक
शबरी कुटिया तक
प्रेम का परालौकिक आकर्षण था
न कि जंगली बेर ।

4. प्रेम के अस्तित्व को नकारते हुए
उसके अस्तित्व की कैद हो जाना
दुनिया का सबसे बड़ा भावनात्मक अजूबा है
बस उन्हें देखो जो
इसकी गहराई में उतर चुके हैं
डूब के बाहर नहीं आना चाहते
फिर चाहे वो तूफान में घोसला बचाती
नन्ही चिड़िया हो
या घर के आंगन में कागज की नाव तैरता
खुश होता नौनिहाल बचपन

प्रेम सांसों से बंधा,
हृदय की धड़कनो की गति में शामिल,
रोम रोम में जब अपना प्रभाव
छोड़ने लगता है
तब वह उस बीमारी से कम नहीं
जिसका कोई इलाज नहीं
यह वो पकड़ है जिसका कोई छुटकारा नहीं
महलों की रानी मीरा बीमार थी कृष्ण प्रेम में
कालजयी हो मीरा कान्हा प्रेम का पर्याय बन गयी
हिंसक नृशंश अंगुलिमाल 'मरा मरा' कहते
प्रेम पाश में 'राम मय' हो गया।

5. प्रेम का उद्गम और अंत
उत्पत्ति होना / पराकाष्ठा को प्राप्त करना

कदाचित यह उस नदी की तरह है
जो पहाड़ों की ऊंचाइयों से
एक पतली जल लकीर की तरह
अचानक उदय होती है,
शनैः शनैः वह जल और बहाव का
बड़ा सैलाब बन जाती है
फिर जो भी उसके मार्ग में
उसके बीच में आता है
उसके अस्तित्व को तहस नहस करती
अपने भीषण बहाव में
समेट कर चलती बनती है
जैसे ही पाती है प्रिय सागर का स्पर्श
उदंड प्रेम नदी की भांति
अदृश्य / विलीन / चिर शांत
अस्तित्व हीन हो जाता है।

फ्लैट नं 6152
एटीएस,
होमकापर नोविलिय नोटला एक्सटेंशन वेस्ट (उत्तरप्रदेश)
पिनकोड- 201318

मैं कहां हूँ ?

-संतोष गर्ग 'तोष'

हे स्त्री!
'मैं कहाँ हूँ'
यह सवाल करती तुम
अच्छी नहीं लगती ...
यदि तुम बेटी हो, मैं बाप हूँ
बहन हो तो भाई हूँ
प्रेमिका हो तो प्रेमी
पत्नी हो तो पति हूँ
तुम माँ हो.. तो
बेटा हूँ तुम्हारा..
दादी हो तो दादू हूँ
नानी हो तो नानू...
कभी नहीं सोचा मैंने-
'मैं कहां हूँ....।'

हे सखी!
तुम ऐसा क्यों सोचती हो..?
तुम मेरा हृदय हो!
मेरी बाजूओं का बल हो!
सोचने की शक्ति हो!
मेरी भक्ति हो!
मेरी आशाओं की डोर हो!
विश्वासों की पोर हो!
मैं चलता फिरता
उठता-बैठता, खाता पीता
सब कुछ, तुम्हीं से तो करता हूँ तुम जानती हो
मैं थोड़ा-थोड़ा तुमसे डरता भी हूँ... ।
पगली!
तुम पूछती हो 'मैं कहां हूँ'
यह धरती, हवा,
जल, तेज, अंबर
सब जगह
तू ही तो है...!
तुम मेरी अर्धांगिनी हो!
तुम बिन मेरा
कोई अस्तित्व नहीं....
हम एक हैं...
पूरक हैं एक दूजे के...
हां!
आगे से कभी ऐसे सवाल मत करना ...!!!

संपर्क :
471, सेक्टर-8
पंचकूला-134109 (हरियाणा)
मो. 79564-12630
ई-मेल : santoshgarg1211@gmail.com

<u>कहानी</u>

मुकद्दर की पोटली

-वीणा विज 'उदित'

काश । बापू ने इस्कूल में दो अच्छर पढाए होते तो माथा न खपता। बेनी राम यही सोच-सोचकर परेशान था। पढ़ा-लिखा तो था नहीं, तो पूछने से ही बात बननी थी, सो पूछा- 'बाबूजी, का.. यही जालंधरवा पंजाब का इस्टेसन है ना?'

'हमारा सिर मत खाओ भैया, वह रहा बाहर का रास्ता' कहकर टीटी ने उन्हें बाहर का रास्ता दिखा दिया। क्योंकि वह बाबू को ऐसे पचास बार पूछ चुका था और बाबू चिढ़ गया था।

बेनी राम यूपी के बहराइच जिले के एक दूरदराज गांव से दो दिन का सफर तय करके परिवार को लेकर गांव से शहर की चमक में आ पहुंचा था। सिर पर पेटी, उसके ऊपर दरी में पतला सा बिस्तर बिछौना और चार थैले पोटलियों से भरे कंधे पर लटकाए, हाथ में बेटे का हाथ पकड़े प्लेटफार्म से बाहर निकला तो जाना कोई नई दुनिया में आ गए हों। यूपी-बिहार, राजस्थान के गांव से लोग प्रतिदिन रेलगाड़ी से उतरते हैं एक नए जीवन की तलाश में फिर कौन-सी भीड़ उनको निगल जाती है-वे स्वयं भी नहीं जान पाते हैं। लेकिन पलायन का असर समाज पर तो पड़ ही रहा है। फिल्मों में भी दर्शाया जाता है।

मुजफ्फर अली की फिल्म 'गमन' में इसी पलायन के दर्द को अद्भुत तरीके से प्रस्तुत किया गया था। एक गीत था, 'आंखों में जलन, सीने में चुभन-सी क्यों है? इस शहर में हर शख्स परेशान-सा क्यों है?'

ख्वाजा अहमद अब्बास की फिल्म 'शहर और सपना' भी महानगरी में गांव और कस्बों से आए लोगों के दुख-दर्द को दर्शाती है। राज कपूर की फिल्में आवारा और श्री 420 आदि के नायक भी गांव से महानगर में आकर अपनी मासूमियत और ईमानदारी को खो देते हैं।

बेनी राम भी किस्मत के लेखे से महानगर में पहुंच गया था। उसने अपने गांव में लोगों के मुंह से जालंधर का नाम भर सुन रखा था। सो, हिम्मत करके वह भी परिवार लेकर जालंधर की ओर चल पड़ा था।

बेनी राम की लुगाई 'झिमिया' एक बेटे को गोद में लिए सिर पर छोटी-सी पेटी उठाए और कंधे पर एक थैला (छोटी-मोटी पोटलियों का) उठाए घर वाले के पीछे-पीछे रेलगाड़ी के डिब्बे से उतर ली थी। बड़के बेटे रमेश ने मां की धोती को पकड़ रखा था। मन में गंगा मैया को प्रणाम कर रही थी कि ना मालूम उनकी तकदीर की पोटली में विधाता ने का लिख रखा है? रक्छा करना मैया!

बहराइच जिला में ढेरों गांव हैं जहां से लोग पटियाला, अंबाला, जालंधर की ओर आते जा रहे हैं। अपने देश में रहते हुए भी उनके लिए यही विदेश है; जहां वे मेहनत मजदूरी करके, पैसे कमा कर अपने गांव में बूढ़े मां-बाप को भेजते हैं, जिससे वह साहूकारों का कर्जा उतारते और बेटे-बेटियों के ब्याह की जिम्मेवारी पूरी करते हैं।

बेनी राम के तीन बेटे हैं जिन्हें लेकर तकदीर आजमाने आया है जालंधर। क्या मालूम उसके मुकद्दर की पोटली में ऊपर वाला कौन-सा खेल रच रहा है.....?

ढेरों ग्रामवासियों का प्रतिदिन शहर में पलायन होने पर भी घरों, दुकानों और होटलों में काम करने वालों की कमी बनी रहती है। घरेलू नौकरों की किल्लत तो बहुत ही है; ढूंढने से नहीं मिलते। पहले गोरखे 'बहादुर' नेपाल से आ जाते थे लेकिन उनकी ईमानदारी को अब बेइमानी का ठप्पा लग गया है। उन्हें रखना खतरा मोल लेना हो गया है। सो यूपी के छोरे और छोरियां लोग घरों में नौकर रख लेते हैं।

स्टेशन पर बेनी राम ने सबसे पहले रिक्शा स्टैंड ढूंढ़ा, जैसे ही वहां पहुंचा तो यूपी के भैया लोगों को देखकर उसे थोड़ी राहत हुई। वहां उन लोगों से रहने के ठिकाने की जानकारी लेने लगा। झिमिया घूंघट काढ़े बच्चों के संग उसकी पीठ पीछे खड़ी रही। तभी अपनी जात-बिरादरी के यूपी के एक भैया ने बताया कि फेस-टू में नए घर बन रहे हैं, वहीं जाओ।

बेनी राम ने पूछा- 'का भैया, पासा हि मा रहयै की खातिर कोऊ ठौर-ठिकाना मिल जइहै उहां ?' (क्या भैया वहाँ रहने के लिए ठिकाना मिल जाएगा?)

'हमऊ अपन बीवी-बबुआ के लई के ऊहां ई रहत हैं अध-बनवा मकान मा: तुमहू जावा ऊहां ई। तब्बौ समझ परई। बाकी तो खोली का कराया मांगत हैं और बिजुरी का खरचा अलग से! जाबा भैया गाहकों का टैम है।' यह कहकर वह किसी सवारी से बात करने लगा था। (हम भी आधे बने मकान में बीवी बच्चों के साथ रहते हैं तुम भी वहीं जाओ। वहां जाकर समझ आएगा! बाकी के लोग तो किराया मांगते हैं और बिजली का खर्चा भी अलग से देना पड़ता है।)

थोड़ी दूर पर कमेटी के नल से सबने बारी-बारी पानी पिया और हाथ पैर धोए फिर झोले से चबैना (खाने का सामान) निकाल बच्चों को और अपने मर्द को देकर झिमिया ने कुछ दाने अपने मुंह में भी डाले।

बेनी राम वहीं स्टेशन से कुल्लड़ में दोनों के लिए दो चाय ले आया। सो पेट पूजा करके उन्होंने एक रिक्शेवाले से बात की और फेस टू जाने का पक्का मन बना लिया। जय गंगा मैया को पुकार, संकट मोचन बजरंगबली की गुहार लगा वह रिक्शा में परिवार को लेकर बैठ गया। अपने गांव की नदी को वे गंगा ही मानते हैं, क्योंकि वह जाकर गंगा में समा जाती है तो उसी का जयकारा बुलाते हैं, ये भक्ति भाव से भरकर। अब जो रिक्शा चला अंजानी मंजिल की ओर तो झिमिया हनुमान चालीसा का पाठ मन में करती जाती थी। सपनों की उस मंजिल पर पहुंचने को थे, जिसके सपने संजोए घर से पलायन करने का दुस्साहस कर सके थे।

घंटा भर चलने के बाद, बेनी राम को दूर से एक अधूरा बना घर जहां काम बंद पड़ा था दिखा, तो उसने वहीं जाकर रिक्शा को रुकवाया। उजाड़ जगह थी। कोई आदमी नहीं दिखाई दे रहा था वहां, लेकिन हौंसला करके इन्होंने अपने पेटी बिस्तर वहीं रखे और उनसे सटकर जमीन पर ही उकड़ू हो के सब बैठ गए। मानो, मंजिल पर पहुंच गए हों। बेनी राम के मन में भय भी समा रहा था। वहां कोई भी तो दिखाई नहीं दे रहा था और शहर भी अंजाना था।

'संझा होए को है। निकाला थइला मा से लालटेन और तेल के सीसी। दीया बत्ती तो करिहैं।' (संध्या हो रही है थैले में से लालटेन और तेल की शीशी निकालो, रोशनी करें।) कहते हुए उसने झिमिया की तरफ देखा।

झिमिया ने सब लाकर धरती पर रख दिया। इसके बाद दोनों बेटों के साथ बाहर पड़ी पत्थर की सिलें खिसकाकर यह लोग धीरे-धीरे भीतर ले गए और उन्हें आपस में सटाकर आधे कमरे का फर्श बना दिया। उसी पर दरी और चद्दर बिछाई। जिस पर तीनों बच्चे खेलने लगे। लालटेन जल जाने पर झिमिया ने सत्तू की पोटली थैले में से निकाली और खाने के लिए सबको देते हुए बोली- 'ई पेट की आग तो जरी जात है। खाए को मांगत है, ई को बुझाए लो, फेर पड़े रहियो सबै सोए के खातिर। काहै रमेश के बापू, इहां तो कोई दिखबै नांही। सुभोह और आगे जाके पता करिहो, अकेल बच्चन के संग भय लागत है ईहां। कौनों ऊंच-नीच हुई गइबो तौन क्या करिबै? (पेट की आग तो जलती है इसे बुझा कर सब सो जाओ। रमेश के बापू, यहां कोई दिखाई नहीं दे रहा। सुबह आगे जाकर पता करना। यहां भय लगता है। कुछ ऊंच-नीच हो गई तो क्या करेंगे?)

यह सुनकर बेनी राम झल्ला कर बोला, 'चुप्पैचाप पड़ी रहो। काहे बके जात हौ बच्चन के आगे? है ना हम, सब कुछ देखबै। सो जावा, भोले बाबा हमार रकसा करी।' जय भोले बाबा की। (चुपचाप पड़ी रहो क्यों बकवास कर रही हो बच्चों के सामने ? हम हैं सब कुछ देखेंगे। अभी सो जाओ। भोले बाबा हमारी रक्षा करेंगे।)

हाथ जोड़कर सिर नवाकर वे सब सो गए। सफर के थके थे, सो आराम से नींद की गोद में चले गए थे सब के सब। जैसे ही सुबह आंख खुली तो बेनी राम ने देखा कि आंगन में एक रिक्शा खड़ा है और उसकी गद्दी पर एक मानुस सोया है। तभी बच्चे उठे तो उनकी चिल्ल-पौं का शोर सुनकर वो भला मानुष भी जाग गया। एक दूसरे को देख कर दोनों मर्दों ने एक-दूसरे को राम-राम किया और बातचीत की तो मालूम हुआ कि वह 'भोला' भी यूपी के लखीमपुर खीरी जिले का रहने वाला है। कुछ महीनों से वह इसी मकान के आंगन में आकर ठहरता है। उसे कभी कोई पूछने नहीं आया। इस मकान का आधा काम होने के बाद से मकान मालिक मालूम नहीं किस मजबूरी में इसे बीच में ही छोड़ गया। अब यह लावारिस अधूरा घर ही उसका भी ठिकाना है। बेनी राम तो कुछ जाने बिना ही इसे अपना ठिकाना बना कर बैठ गया था। वह गर्व से अपनी लुगाई (पत्नी) पर रूआब झाड़ कर बोला, 'तुम मेहरिया लोगी हम का भी डराए दी रही। देखा भोले बाबा हमार विनती सुन लिए रहे, तबै तो सही ठिकाने पर पहुंचाए रहे। अब चैन से रहीवे इहां। कौनो भय नहीं है। भोला भैया हम को तसल्ली दिए हैं। अबौ ऊके साथ हम भी काम खोजे जाब।' (तुम औरत लोग हमको भी डरा दी थी। देखा भोले बाबा ने हमारी विनती सुन ली. तभी तो सही ठिकाने पर पहुंचाया है। अब चैन से यहां रहो कुछ भय नहीं है। भोला भैया ने हम को दी है। अब उनके साथ हम भी काम खोजने जाएंगे।'

क्रिमिया ने भी बोला 'का कहे हैं रमेस के बापू । तनिक ऊ को भी खाईबे को पुछियों कि ऊ तमासा देखबे ? ओके पास तो कुछ देहीका मालूम किती खाए पिए जात ही? अबे ईहा है तो पुछड़ लो। चबेना दे देवें ऊको भी (रमेश के बापू उसको भी खाने के लिए पूछ लो उसके पास कुछ दिख नहीं रहा पता नहीं कहां खाता है अब यहां है तो चयेना उसको भी दे देते हैं।)

बेनी राम ने लगते हाथ भोला को चबेना खाने का न्यौता दे डाला। भोला को भला और क्या चाहिए था ? झट खाने बैठ गया वह भी उनके साथ। बार-बार झिमिया की ओर तांक-झांक करके उसका मुंह देखने को आतुर भी था, जबकि झिमिया घूंघट की ओट से सब तक रही थी। उसकी एक आंख बंद थी यानी कि भोला 'काना' है। पर शरीर का गठन तगड़ा था। जब भोला रिक्शा लेकर चला गया तो झिमिया पति से बतियाने लगी, 'काहे, तोहार नए दोसत के आंख का एको बाजार बंद है का ? (सुनो, तुम्हारे नए दोस्त की आंख का एक बाजार बंद है क्या?)

'हां, वह कनुआ है। का मालूम ओके सन्ग कौन सी अनहोनी भई जा कैसी विपदा पड़ी रही। पूछिहें कबाँ?' (हां, वह काना है। क्या मालूम उसके साथ कैसी घटना घटी रही कभी पूछेंगे।)

'अबहु तो ई इलाका को जान लें, तो पक्कई रहन कौ सोची इंहां। कमेटी का नल और जंगल पानी जाई के लाने देखबू कहीं।' (अभी तो इस इलाके को जान लें तभी पक्का रहने का यहां सोचें। कमेटी का नल और टॉयलेट जाने का देखूं कहीं।)

आसपास घूम कर जगह की पहचान में ही बेनी राम ने सारा दिन बिता दिया और किरयाने की दुकान भी देख आया। इधर, झिमिया भी बड़े बेटे रमेश को साथ लेकर चूल्हे के लिए लकड़ियां बीनने चली गई थी। शाम को ईंटों का चूल्हा जला तो आलू की तरकारी बनी क्योंकि साथ में बर्तन तो थे ही। सब ने शांति से पेट भर कर खाया और भीतर जाकर सो गए। सुबह फिर भोला मिला। वह ना जाने कब आता था रात को ? खैर आज उसके रिक्शे में बैठकर बेनी राम भी किराए का रिक्शा लेने चल पड़ा था। जबकि भोला का अपना रिक्शा था। भोले के लाख कहने पर भी बेनी राम को किराए का रिक्शा नहीं मिला। मायूसी में बेनी राम का मुंह हथेली को आ रहा था। बीवी बच्चे तीन-तीन और चौथा अभी रास्ते में था, कैसे निर्वाह करेगा वह ? अपना घर गांव याद करके उसके नैन छल-छला आए थे। मायूस बाजार और जीटी रोड पर घूमने लगा कि कहीं कोई मजदूरी मिल जाए।

'टूटे हुए ख्वाबों की एक लंबी कहानी है शीशे की हवेली से पत्थर के मकानों तक!' (मुझे आलोक श्रीवास्तव के 'आमीन' की एक पंक्ति याद आ गई है इस पर।)

सांझ ढले बेनी राम वहीं जाकर सड़क किनारे बैठ गया जहां भोला उसे आने का कहकर गया था। भोला रात होने पर आया। तब तक उसका जी हलकान हुए जा रहा था। नाकामी इंसान को जीते जी मार डालती है। खैर, भोला उसे सड़क किनारे एक लंगर पर ले गया; जहां दोनों ने पूरी भाजी हलवा खूब पेट भर के खाया और दो-तीन दोनों में बच्चों के लिए भी उन्होंने पूरियां इकट्ठी कर ली थीं। भोला के साथ वह ठिकाने पर तो सही पहुंच गया था लेकिन निराशा से उसका मुंह लटका हुआ था। बच्चों को चाव से पूरियां खाते देख उसका मूड थोड़ा बदला और दोनों बाहर पत्थर पर बैतकर शहर के काम के ठिकानों की बाबत बात करते रहे रात देर तक।

एक और ठिकाने से भी रिक्शा नहीं मिला लेकिन दिहाड़ी मजदूरों की लाइन में लगकर उसे आज पांचवे दिन दिहाड़ी मजदूरी मिल गई थी। सांझ को सौ सौ के तीन नोट मिलने पर उसकी सारे दिन की तकलीफ खत्म तो नहीं पर हां, कम अवश्य हो गई थी। घर पहुंचने पर मेहरिया को तीन नोट सौ-सौ के पकड़ाते हुए उसकी आंखों की चमक ऐसी थी कि इसी कारण तो महानगर को पलायन किए थे। आंखों की पलकों पर ढेरों सपनों ने अपना बसेरा तभी कर लिया था, पर शरीर से कमजोर होने के कारण रात को झिमिया ने पीठ पर गर्म तेल मला तो उसे कुछ राहत मिली और वह सो पाया था।

वक्त अपनी चाल से चलता रहा और उसी ढंग से जीवन भी चलने लगा, लेकिन बेनी राम का दुबला पतला तन और सूखने लग गया था। कभी दिहाड़ी का काम मिलता था तो कभी खाली रहने पर आढ़ती बाजार में माल ढोने चला जाता था। उधर, शिमिया की जंचकी के दिन करीब आ गए थे। एक रात असह्य वेदना में झटपटाने पर मुंह उघड़ा ही झिमिया को भोले की रिक्शा पर बैठाकर रमेश के भरोसे दोनों छोटे बेटों को छोड़कर वे लोग सिविल अस्पताल चल पड़े थे। रास्ते भर भोला झिमिया के चेहरे की चमक देखकर हैरान था। उम्र की ढलान तो अभी नहीं थी, पर अभी भी बला की कशिश थी उस चेहरे पर। तीन बच्चों की महतारी (मां) चौथा जनने जा रही थी, तब भी इतनी सुंदर। और गठी हुई। कि मुखडे से आंख ना हटे !!

बचपन में भोला ने खेल-खेल में आंख क्या गंवाई कि उसका मन इस ओर कभी अटका ही नहीं। जवान होने पर लोगों को मिलने से कतराता रहा क्योंकि सब 'कनुआ' कहने लगते थे। कहीं बार लोगों में बैठना नहीं हो पाता था इसी कारण वह क्या जाने औरत का रूप? अब दर्द से छटपटाते बेनी की मेहरिया को करीब से देखने का मौका मिला तो मेहरिया का रूप देखा। अपनी बेबसी और अपने को को उन्हीं ख्यालों में इबा कब अस्पताल पहुंच गया, वह जान ही न पाया।

झिमिया को दाखिल कराकर दोनों बाहर ही चुपचाप एक तरफ बैठे रहे। बेनी राम को तो जमाने भर की चिंता थी और भोला मन ही मन अपने नसीब में औरत का सुख ना पाने का दुख मना रहा था। घंटे भर बाद ही नर्स ने आकर बताया कि तुम्हारे यहां बेटा हुआ

है। इतना सुनकर तीन बेटों का बाप भी खुश हो गया और भोला ऐसे खुश हुआ, मानो उसकी लुगाई के बेटा हुआ हो। वह झट से बाहर भागा। जाकर चाय के दो कुल्लहड़ और जलेबी का दोना भर के ले आया। बेनी राम का मुंह मीठा कराया और अपना भी। अब वह जाने लगा तो बेनी राम ने उसे रोक लिया, 'कहां जात हो भइय्या? तनिक ठहरा, भीतर जाए के मेहरिया का मुंह भी मीठा करईहैं। आवा हम संग भीतर।' (कहां जा रहे हो भाई? अपनी बीवी का मुंह भी मीठा करा दें, तुम भी मेरे साथ भीतर आओ।)

'काहे नाही! अरे भौजी को तो मिलवैई करी, बधाई देई के खातिर।' (क्यों नहीं भाभी को तो मिलना है बधाई देने को।)

नर्स से पूछ कर दोनों भीतर गए तो भोले की बांछें खिल गई थीं। अपने हाथ से उसने झिमिया के मुंह में जलेबी डाली। मानो, भगवान को भोग लगाया हो। वह भी बेतकल्लुफ होकर खाने लगी और उसे देख कर पहली बार मुस्कुराई, क्योंकि अभी तक घूंघट की ओट से ही बात होती थी। इस पर भोला खुशी से झूम उठा। तभी बेनी राम ने नर्स से पूछा, 'माई बाप! इको छुट्टी कब मिलहे ? (इसको छुट्टी कब मिलेगी)

नर्स बोली, 'इस पेपर पर अंगूठा लगा दो और कल शाम को घर ले जाना। खाना मत लाना, खाना यहीं मिलेगा। चार बच्चे हो गए हैं तो अब इसका इलाज कर दिया है और बच्चे नहीं होंगे। इसकी खातिर इसको कुछ रुपए मिलेंगे!'

बेनी राम की समझ में कुछ आ रहा था और कुछ नहीं भी। वह मुंह उठाए सुनता रहा और दोनों हाथ जोड़कर वहां से चला आया फिर कल उसे लेने आने के लिए। वह इसी बात से प्रसन्न था कि मां बेटा दोनों ठीक-ठाक हैं। बाहर से बच्चों के लिए और जलेबी लेकर वह दोनों वापिस ठिकाने आ गए थे।

ऐसे ही हंसी खुशी दिन बीतने लगे थे। बेनी राम नोटिस कर रहा था कि भोला झिमिया के पास बच्चे को खिलाने के बहाने अधिक बैठने लग गया है। एक दिन झिमिया के लिए नई साड़ी भी ले आया था। उधर बेनी राम कुछ पैसे जोड़ रहा था गांव भेजने को, पर मजदूरी करने से उसकी सेहत काफी गिर गई थी। घर आकर वह बीमार की भांति जमीन पर लोटता। लुगाई के साथ सहवास भी नहीं कर पाता था। खर्चा बढ़े जा रहा था। अब भोला भी उनके साथ खाना खाता था। गरमा गरम भोजन झिमिया के हाथ से मिलता था इस कारण किराने का सामान भी वही लाने लग गया था। भोले की नजरों को बेनी राम भली-भांति जान गया था। वह भोले को पैसा देता, तो वह नहीं लेता था। वह कहता, 'अरे बेनी भैया हमार और कोनो नहीं है ई जग में, इत्ता तो तुम जानत हो ना! तोहार परिवार ही अबै हमार अपना है इत्ता समझ लो।' (भैया मेरा और कोई नहीं है इस जग में बस तुम्हारा पूरा परिवार ही मेरा है इतना समझ लो।)

रमेश बड़ा बेटा दिमाग का थोड़ा कमजोर था लेकिन महेश अभी से समझदार निकला था। तीसरा तो अभी तीन बरस का था पर चुस्त था। एक दिन बेनी राम ने महेश को बुलाकर कहा, 'बिटवा, हम गांव जइहैं, तोहार दादू और दादी के लाने। तुम आपुन महतारी और भय्यन का ध्यान रखबै ना? भोला खर्चा करी हैं। ई बारे कोनो फिकर ना करिहैं।' (बेटा, हम दादू, दादी के लिए गांव जा रहे हैं तुम अपनी मां और भाइयों का ध्यान रखना। भोला खर्चा करेगा इसकी तुम्हें फिक्र करने की जरूरत नहीं) तदोपरांत एक झोला ऊंचे खूंटे पे टांग कर बेणीराम चुपचाप रात के अंधेरे में अपनी पत्नी और बच्चे किस्मत के भरोसे छोड़ के वहां से प्रस्थान कर गया।

शायद वह अपने आप से हार गया था। उसे भविष्य की चिंता नहीं थी। अब जैसे हालात घर में बन रहे थे उससे शायद वह निश्चिंत था। फिर भी जीवन रहते बंधन मुक्त होना कोई विरला ही कर सकता है। झिमिया को पता चलने पर उसने खूब रोना-धोना किया और महेश को जी भर के मारा भी। फिर भोला को घर का पता बताकर डाकखाने से चिट्ठी भी डलवाई। दो महीने बाद जवाब आया कि वह तो गांव आया ही नहीं। ना मालूम वो राह में कहां गुम गया था! झिमिया ने मातम मनाया खूब रोई, बच्चे भी रोए। सब को रोने के लिए भोला के कंधे और छाती का सहारा मिला। उधर भोला को झोली भर के बच्चों का सुख और भौजाई मिल गई थी। सीधे-साधे गांव के महानगर में पलायन किया था, तो कुछ बिरला तो होना ही था। मासूमियत का गला घुट गया था।

बुलाया, यूं ही एक दिन झिमिया की नजर दीवार पर पड़ी तो अचानक इतना ऊपर झोला टंगा देखकर, वह हैरान हुई और उसने रमेश को

'अरे बिटवा, ई झोला तो उतारी। कऊन टांगे रहे? (बेटा यह झूला उतरना किसने टांगा है?)

'अरे अम्मा हम नहीं पावत हैं। मां मेरा हाथ नहीं पहुंच रहा।)

इस पर सिमिया ने पास खड़े ऊंचे-लंबे भोला को उसे उतारने का इशारा किया।

भोला ने शिमिया के कहने से उतार कर झोला उसको दे दिया। झिमिया ने देखा उसमें दो पोटलियां पड़ी थीं। अब इनमें से क्या निकलेगा यह तो ऊपर वाला ही जानता था। होनी खेल रच रही थी। एक में कुछ रुपए थे. जो बेनी राम परिवार के लिए छोड़ गया लगता था और दूसरी में शायद होनी बैठी थी, क्योंकि उसमें झिमिया के माथे की टिकुली, सिंदूर और सिंगार का सामान था।

तभी अचानक पलक झपकते हो सिंदूर की डिब्बी उठाकर भोला कनुआ ने झट चुटकी भर सिंदूर लेकर झिमिया की मांग में बच्चों के सामने ही, उसी समय भर दिया। झिमिया का दिल खुशी के मारे बल्लियों उछलने लगा। वह भी मन ही मन उसके शरीर की गठन को पसंद करती थी।

बेनीराम के लिए उसने बहुत रो-धो लिया था। उसे अब एक मर्द चाहिए था। उसने कनुआ की नकल करते हुए शरारत से एक आंख बंद करके उसकी तरफ देखकर मुस्कुरा भर दिया। बच्चों ने इस खेल पर तालियां बजा दीं।

469-आर, मॉडल टाऊन,
जालंधर-144003
फोन: 96826-39631

वापसी

–सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक'

रामशरण सात वर्ष बाद वापस स्वदेश जाने वाला है। एक नया उत्साह उसके मन में है। अनेक वर्षों से वह प्रयासरत है कि स्वदेश वापस जाए परंतु कोई न कोई आवश्यक कार्य उसके परिवार में निकल आता और वह चाहकर भी न जा पाता। कभी गाँव में पक्का घर बनाना होता, कभी गिरवी खेत महाजन से छुड़ाने होते तो कभी भाई-बहनों के स्कूलों की फीस देनी होती। वह बड़े भाई होने का फर्ज बखूबी निभाता रहा है। पाँच भाई-बहनों में सबसे बड़ा है वह।

जब वह विदेश आया था तब उसने खेत गिरवी रखे थे। उसे अतीत की सभी बातें स्मरण हैं। वे भी दिन थे जब विदेश भेजने के लिए एजेंट ने उससे पूरे पाँच लाख रुपए लिए थे।

जब पड़ोस में उसका हम उम्र दिलीप सिंह विदेश जा सकता है, जो पाँचवी जमात तक पढ़ा था, तो वह तो बी.ए. पास है और ट्रक चालक भी है फिर वह क्यों विदेश नहीं जा सकता। वह अक्सर तुकबंदियाँ करता और विदेश जाने के पूर्व कहता,

'आसी भी जावांगे परदेश, बनकर आवांगे अंग्रेज़,
उठा के सोटी लाले नु मारां, पैसे उसके मुख पे मारां
ऊँचा जो मकान बनावां, गाँव म अपनी टोर बधावां'

उसके साथियों के साथ बहुत बुरा हुआ। उसके साथ गए तीन सौ लोग जो नाव द्वारा इटली जा रहे थे, इटली के पास नाव डूबने से मारे गए थे। एक तो दो सौ लोगों को ढोने वाली नाव पर तीन सौ लोगों के सवार होने पर वैसे ही असुरक्षा को आमंत्रण दे दिया गया था। जब नाव के नाविक ने नाव चलाने से मना किया तो लोगों ने अशांति उत्पन्न करना, शोर मचाना आरंभ कर दिया था। कहते हैं कोई भी नाव से उतरने को तैयार नहीं था। कैसा होता है यह जीवन को बेहतर बनाने के लिए विदेश जाने का सुख ?

जिस दिन वह नाव दुर्घटना हुई उस दिन समुद्र में तेज हवाएँ चलने लगी थीं। तेज हवाओं में नाव का संतुलन बिगड़ गया था। नाव डूब गई और उस पर सवार सभी मारे गए थे। उस नाव पर रामशरण सवार नहीं हुआ था क्यों कि उसकी भेंट एक ट्रांसपोर्ट मालिक से हो गई और उसके कहने पर रामशरण उसके साथ रुक गया था। रामशरण के घर वाले उसे दो महीने तक मरा समझते रहे जब तक उसका विदेश से पत्र नहीं आ गया था।

आज उसे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि उसके खेत मुक्त हो गए है। घर पक्का बन गया है।

रामशरण को अपने वतन से बहुत प्रेम है। चाहे संगीत हो या कपड़े वह सदा स्वदेशी वस्तुओं को पसंद करता। पर दूसरों के लिए उसने विदेशी वस्तुएँ ख़रीदी हैं। होली आने वाली है वह अपने देश जा रहा है। वह भारतीय ट्रेवेल एजेंसी से टिकट खरीदता है। उसका कहना है कि विदेश में यदि आदमी के पास काम हो और वह अनपढ़ भी हो तो उसका काम चल जाएगा। मंदिर-गुरुद्वारे में अपनी भाषा। दूतावास में अपनी भाषा। भारतीयों की अपनी ट्रेवेल एजेंसियाँ हैं, उनके अपने रेस्टोरेंट हैं। भारतीय सामान अनेक प्रवासी दुकानों पर मिलता है। रही बात विदेशी भाषा की वह तो जहाँ आदमी रहता है सीख जाता है। उच्चारण सही न भी हुआ तो कोई बात नही यदि भाषा अच्छी तरह सीख भी ली तो कौन उसे भाषा का प्रोफ़ेसर बना देगा।

रामशरण अपनी कार चला रहा है। पुरानी फ़िल्म का गीत बज रहा हैं,

'ऐ वतन ऐ वतन मुझको मेरी कसम, तेरी राहों में जान तक लुटा जाएँगे।' तभी वह कार रोकता है।

'नमस्कार हरदेव सिंह!'

'नमस्कार रामशरण ! सुना है कि तू इंडिया जा रहा है।'

'हाँ, मैं भारत जा रहा हूँ।'

'यार जब वापस आना तब मेरी माँ को साथ लेते आना। दो बरस बाद उनका वीजा मिल गया है। तुसीं अपनी भाषा-बोली भी बोलते हो तो माँ नू बहुत आराम हो जाएगा।'

'यह तो कोई बात ही नहीं, हरदेव सिंह। मेरी वापसी तारीख मुताबिक ही माँ की टिकट कटाओ। मैं आराम से उन्हें लेता आऊँगा।

'आए इतनी दूर विदेश, अच्छा लगता अपना देश। मित्रों से कहना यह संदेश सूना लगता है परदेश। अपने घर के कटें क्लेश धनी बनेगा अपना देश नहीं चाकरी यहाँ करेंगे जिएँ मरेंगे अपने देश।'

एक समय था जब उसके पास पैसे न होते और पड़ोसी बनिए लाला जोगीराम से वह उधार माँगता। लाला को खुश करने के लिए वह कविता में बातचीत करता था,

'लाला जी दे दो उधार, मुझको मिली न पगार' लाला भी अपनी तुकबंदी सुनाता, 'आज नकद कल उधार, क्यों करूँ कंगालों से प्यार'

रामशरण कहता,

'लाला एक दिन मैं भी पैसे वाला आदमी बनूँगा तब सारा उधार चुकता कर दूँगा।'

'जिसकी बनी उसी से बनी, वरना लाला की उनी। बड़े आदमी भी तो तुम मेरे उधार से ही बनोगे।'

'छोड़ो भी लाला। आज का रंक कल राजा बनेगा।'

'फिर तुमको उधार को भी मना नहीं करूँगा, रामशरण।'

बादलों के बीच गड़गड़ाहट करता हुआ जहाज उड़?ता चला जाता है। जैसे रुई के फाहे के बीच में उड़ रहे हैं। एक परिचारिका रामशरण को जगाती है कहती है कि अब दिल्ली आने वाला है और वह सीटपेटी बाँध ले। आठ घंटे की यात्रा के बाद हवाई जहाज घोषणा करता है कि हम कुछ देर में नई दिल्ली हवाई अड्डे पर पहुँचने वाले हैं। नई दिल्ली में तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेट है। उसे खिड़की से अपने देश की भूमि देखकर अपार प्रसन्नता हो रही है। उसके मन में एक नई उमंग है। उसकी आँखों में एक नई चमक, एक नया उत्साह है अपनी स्वदेश वापसी को लेकर।

हवाई अड्डे पर आगमन द्वार से निकलता है। कोई किसी के स्वागत के लिए हाथों में फूल लिए हुए है। कोई आगंतुकों के नाम लिखी तख्ती लिए है। कोई खाली हाथ है तो कोई हाथों में मालाएँ लिए हुए है। रामशरण को लेने कोई नहीं आया है। रामशरण का स्वागत तो उसके गाँव में होगा जहाँ उसके लोग हैं। रामशरण कहता अपने देश में क्या स्वागत। सभी तो अपने हैं। वह टैक्सी पर बैठता है। चालक से मौसम का हाल लेते हुए गाँव के लिए रवाना हो गया है कितना आनंद मिलता है स्वदेश वापसी पर यह वही जान सकता है जो अपने गाँव, नगर और देश से दूर बसा हो।

अध्यक्ष,
भारतीय नादेर्नीय सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम,
ओस्लो नॉर्वे

नौकरानी

-डॉ. नीलम सेठी

विदेश में नौकरानी की बड़ी समस्या है। अपने देश में खासकर गाँव में जिस मर्जी को थोड़े से पैसे देकर लीपना, पोतना, बर्तन, कपड़े सब करवा लेते थे। गप्प-शप्प की चुस्कियाँ अलग। थोड़े से पैसों में पूरे गाँव के किस्सों का मजा ले लो! बतियाते रहो, काम करवाते रहो । आज से 45 साल पहले जब नई-नई शादी हुई कितना लोभ था विदेश जाने का...। प्रवीन पूरे गाँव को बताती, इतराती, इठलाती.. शादी बाद वो 'फौरन 'जा रही है..... सहेलियाँ भी रश्क करतीं उसकी तकदीर से। उनका सारा परिवार ही बाहर 'सैटल' होने जा रहा है। उन दिनों कोई 'वीजा' का काफिया इतना तंग भी नहीं था, न ट्रैवल एजेंटों का शोषण। सारा परिवार बाहर निकल गया। उसके पति हैप्पी की तरह उसके जेठ भी कौन सा पढ़े लिखे थे। जहाँ-जहाँ जिसको हाथ का काम मिलता गया टिकते गए। पति-पत्नी थे, महीना दो सड़कों की खाक छानने के बाद प्रवीन के पति को भी माल लादने, उतारने का काम मिल गया। कई-कई शिफ्टें काम चलता, हैप्पी करीब रात बारह बजे आता, तड़के चार बजे फिर निकल जाता मुँह अँधेरे! सारा दिन छोटे से फ्लैट में पति की प्रतीक्षा में बीतता प्रवीन का समय। कभी रैफ्रिजरेटर में से कुछ निकालकर खा लेती कभी माइक्रोवेव में कुछ सेंक कर। ढंग का खाना तो कभी बना ही नहीं। किसके लिए बनाए ? वो जितने महीने शादी के बाद गाँव मे रही, खेतों में काम चलता। प्रवासी मजदूरों के लिए। मई जून की कड़कती दोपहर में भी उसे चूल्हे की आँच पर अनगिन रोटीयाँ सेंकनी पड़तीं। उन दिनों उसमें भी मज़ा था। कोई गोइठे लाकर चूल्हे में डाल देता, कोई धौंकनी से फूंक मारकर धूएँ को आग में बदल देता यहाँ तो कोई दिखता ही नहीं। सारा दिन हैप्पी की प्रतीक्षा में बीत जाता। कब बीते इतना लम्बा दिन। रात में अकेले एपार्टमेंट में उसे डर भी लगने लगता। उन्होंने कहा था मैं शिफ्ट में होता है, हमें फोन सुनने की इजाज़त नहीं है। फोन न किया करो। मन मारकर कटते इतने लम्बे घंटे। 'जी मुझे भी कहीं काम पर लगवा दो' प्रवीन ने आग्रह किया था। हैप्पी माने नहीं। मैं तुम्हारी हर जरूरत पूरी कर रहा हूँ न बारी.. बारी. ..बारी..... महेश, मोहित, विनीत और रिंकू..। और फिर बारी। परमात्मा ने बूढ़ी हड्डियों पर भी तरस आया। वो सोचती अब बुढ़ापे में वो भी बैठ कर टैलीविजन देखेगी या गार्डन मे 'रिलैक्स' किया करेगी....

जब भी हैप्पी रात को आते, वो दोहराती आप कहते थे गाँव से कोई। एक दिन नाटकीय ढंग से मोहित मां के पास आ बैठा 'मॉम, डैड कह रहे थे, आने को तो एक लड़की गाँव से तैयार है पर उसका वीजा.... वीजा इतनी आसानी से नहीं लगेगा। क्योंकि वीजा रूल बहुत सख्त हो चुके हैं.........। कुछ दिन बीते लड़की द्वारा घर संभाले जाने की कल्पना में सोचकर प्रवीन हिम्मत से ज्यादा काम करती। मोहित फिर पिता का दूत बन कर आया.... आने वाले आरामदायक दिनों को... कुछ देर ही की तो बात है... 'मॉम, डैड कह रहे थे लड़की को किसी युक्ति से ही यहाँ लाया जा सकेगा.....!' उसे लगा जैसे मोहित कुछ ज्यादा कहना चाह रहा है पर जबान उसके शब्द रोक रही है 'मॉम, डैड कह रहे थे सिर्फ एक कागती कारवाई करेंगे उसे लाने के लिए, मॉम के एक साईन चाहिए होंगे 'समझी नहीं. 'मेरे साईन ? वो किसलिए...... प्रवीन कुछ-कुछ भी नहीं, एक फार्मेलिटी है, कागजों में तलाक हो जाएगा और डैड शादी के 'बेस' पर उस लड़की को ले आएंगे... फिर आप को भी आराम और पिंकी और सूजन को काम भी नहीं छोड़ना पड़ेगा......।' बेटे के मुँह से ये शब्द सुनकर प्रवीन को चक्कर सा आ गया। वह सपने में भी कभी ऐसा सोच नहीं पाई थी। 'मॉम आप तो नाहक मन को लगा रही हैं, विदेशों मे रहने के लिए कई कुछ करना पड़ता है, अब सबसे ज्यादा आपको ही जरूरत है नौकरानी की, मजलिस..... हम सब तो सारा दिन ।' बस फिर तो रोज ....अनुनय विनय, मनुहार, कहीं छोटी छोटी झड़पें भी.. आखिर सब ने मिलकर 'मॉम' का दिल मोम कर ही लिया और मॉम ने हाथ से एक 'साईन' फेंक दिया। प्रवीन नहीं जानती अब वो घर में किस सम्बन्ध से रह रही थी. हैं, अपने देश नौकरानी लाने... के चित्र भी चाहिए होंगे शादी के सबूत में.. दिखने लगा.... पहले कागजों में शादी करेंगे... हैप्पी गए.. हनीमून......उसे धरती ऊपर और आकाश नीचे । हैप्पी दो महीने लगाकर लौट आए हैं. घर के सब लोग बहुत खुश हैं। प्रवीन ने रंग बिरंगी मानसिकता में काटे हैं दो महीने इस उम्र में भी। हैप्पी आगे आगे है........... वे उम्र में कम से कम पचास साल पीछे लौट गए हैं. पीछे पीछे चटकीली लड़की पायल छनकाती आ रही है. 'प्रवीन गर्म गर्म चाय पिलाओ.... हैप्पी ने आते ही ऊपर कमरा ठीक कर दो.हमें कहा, मनिन्दर ने 'डिनर' पर बुलाया है...... प्रवीन का काम कुछ और बढ़ गया था............

पूर्व प्राचार्या

पंडित मोहन लाल एस. डी. कॉलेज फॉर विमेन, गुरदासपुर।

साक्षात्कार

सुप्रसिद्ध लेखिका डॉ वीणा विज `उदित' का प्रो. सीमा जैन के द्वारा साक्षात्कार

-प्रो. सीमा जैन

डॉ वीणा विज 'उदित' हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक जाना माना नाम है। लाहौर में जन्मी, मध्य प्रदेश के जबलपुर में पली बढ़ी, पंजाब और कश्मीर की धरती से जुड़ी डॉ वीणा विज 'उदित' एक बहुआयामी व्यक्तित्व की स्वामिनी है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी का लोहा बनवाया है फिर चाहे बात हो कविता लेखन की, कहानी लेखन, लघुकथाओं या फिर संस्मरण को. डॉ वीणा विज 'उदित' का कला कौशल हर क्षेत्र में देखते ही बनता है। साहित्य में पारंगत होने के साथ-साथ वे एनसीसी की सीनियर अंडर ऑफिसर भी रही हैं। 1963 में गणतंत्र दिवस परेड दिल्ली में मध्य प्रदेश को रिप्रेजेंट किया और बेस्ट एनसीसी अंडर ऑफिसर बनीं। संगीत, चित्रकला और नृत्य में भी उनकी रुचि रही। इन्होंने आचार्य रजनीश ओशो से दर्शनशास्त्र की शिक्षा भी प्राप्त की। आकाशवाणी जालंधर तथा दूरदर्शन जालंधर से जुड़ कर इन्होंने हिंदी पंजाबी के करीब सौ नाटकों और धारावाहिकों में तथा छह फिल्मों में अभिनय किया और प्रशंसा प्राप्त की। आइए बात करते हैं बहुमुखी प्रतिभा की धनी इस व्यक्तित्व से जिनका नाम है डॉ वीणा विज 'उदित'।

प्रो. सीमा जैन : वीणा जी, सबसे पहले मैं चाहूंगी कि आप अपनी साहित्यिक अभिरुचि और यात्रा के विषय में हमें कुछ बताएं। साहित्य की तरफ आपकी रुचि कैसे उत्पन्न हुई और वह कौन सी परिस्थितियां थीं या किन चीजों का प्रभाव था जिन्होंने आपको लिखने की दिशा में प्रेरित किया ?

डॉ वीणा विज 'उदित' : आत्मीय सीमा जी, साहित्यिक अभिरुचि हो तो साहित्यिक यात्रा संग ही आरम्भ हो जाती है। जिस भी व्यक्ति के भीतर काव्य का सागर हिलोरे लेने लगता है फिर भाषा की उपादेयता की व सृजनात्मक कौशल की उसे परवाह नहीं होती क्योंकि यदि आप बुभुक्षित पाठक हैं तो लेखकीय कला, शिल्प, संस्कार आप में स्वयं जागृत होने लगते हैं। स्कूल में पढ़ते हुए लाइब्रेरी को देखकर मुझ में पढ़ने की दीवानगी छा जाती थी। लगता था मैं इन सब लेखकों को पढ़ लूं, और आप हैरान होंगी सुनकर कि मैंने दसवीं कक्षा पास करने तक पूरी लाइब्रेरी खंगाल मारी थी। तभी शायद मैं कक्षा में सदा प्रथम आती थी। शाला के ऑफिस में 1959 में मेरे नाम के आगे लिखा गया था 'शाला की पूरी लाइब्रेरी पढ़ने वाली प्रथम छात्रा।'

2012 में मैं वहां गई तो अभी तक उस नाम को वहां आदर के साथ लिया जाता है क्योंकि उसके बाद किसी ने वह रिकॉर्ड नहीं तोड़ा। बस, यहीं से यह साहित्यिक सफर अनजाने में आरंभ हो गया था। किंतु तब मैं इसे ज्यादा तवज्जो नहीं दे पाई थी क्योंकि तब मेरी अभिरुचि नृत्य एवं नाटक की ओर सर्वाधिक थी। हां, एक डायरी रखती थी जिसमें कुछ ना कुछ लिखती रहती थी और किसी को दिखाई नहीं थी कभी भी। उसे मैं साहित्य नहीं कहूंगी। क्योंकि वैसे तो हर व्यक्ति एक कवि है और एक व्यक्ति का समग्र जीवन एक उपन्यास है जिसका वह नायक है। जबकि साहित्य तो आपको अपने में डुबो लेता है।

प्रो. सीमा जैन : आपके जीवन परिचय के बारे में पढ़ते हुए मैंने अनुभव किया कि आपकी विविध अभिरुचियां जैसे कि संगीत, चित्रकला नृत्य, अभिनय, साहित्य आदि आपके व्यक्तित्व को समृद्ध बनाती हैं लेकिन साहित्यकार के तौर पर आपकी उपलब्धियां का सिलसिला बहुत लंबा और गहरा है तो आप हमें यह बताएं कि साहित्य लेखन के क्षेत्र में आपने अपनी एक अलग पहचान कैसे बनाई ?

डॉ वीणा विज 'उदित' : इतिहास को पढ़ने के अलावा उसे जिया और देखा भी जा सकता है। जैसे हमारे महान साहित्यकार जयशंकर प्रसाद जी के महाकाव्य 'कामायनी' को मैंने नृत्य-नाट्य द्वारा मंच पर अभिनीत किया है। इसी प्रकार विभित्र नाटककारों मोहन राकेश, बादल सरकार आदि के नाटक मैंने स्टेज पर खेले जैसे आषाढ़ का एक दिन, हाड़ा रानी, स्वग्नवासवदत्ता, बुद्धा, भिक्षुणी, नूर जहां, दुश भट्टी, शहीद ए आजम भगल सिंह, भगत सिंह की

वापसी, महामंगा आदि कई नाटक मैंने स्टेज पर अभिनीत किए हैं। फिर दूरदर्शन पर हिंदी, उर्दू और पंजाबी लेखकों के ढेरों नाटकों में मैंने विभिन्न तरह के किरदार निभाए जिससे साहित्य मेरी नस नस में, मेरी रगों में दौड़ता रहा है। मैं साहित्य को जी रही थी अभिनय के द्वारा। इसे साहित्य रचना नहीं कहते, लेकिन अपरोक्ष रूप से साहित्य में जीना कहते हैं।

फिर भी यदि आप लेखन को ही साहित्य कहते हैं तो 1960 में कॉलेज पत्रिका के लिए हिंदी की अध्यक्षा को अपनी एक कविता दी तो उनसे मिली प्रशंसा ने मेरा उत्साहवर्धन किया और मेरी कलम चल पड़ी छुप छुप कर अपनी डायरी में लिखने के लिए। उसे मैं किसी को पढ़ाती नहीं थी। मेरी पहली कहानी की पुस्तक जो 2004 में छपी थी 'पिघलती शिला' जिसे ऑथर्स गिल्ड ऑफ़ इंडिया की ओर से 2007 का सर्वोत्तम कहानी संग्रह का अवार्ड मिला था और मुझे 'साहित्य सर्वोदय' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। उसमें लिखी कहानियां उसी डायरी से ली गई थीं।

धीरे-धीरे मैं सफलता की सीढ़ियां चढ़ रही थी, तब मुझे कोई ज्ञान नहीं था कि मैं कहां तक पहुंच पाऊंगी। फल सोचे बिना केवल कर्म करना ही मेरा ध्येय हो गया था। गीता के अध्याय-2 में लिखा है ना.....

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

तभी तो ईश्वर की असीम कृपा और मेरी कड़ी मेहनत और लगन ने मुझे आज लेखन के क्षेत्र में एक अलग पहचान दे दी है।

प्रो. सीमा जैन : एक साहित्यकार के रूप में आपकी कृतियों की यदि बात करें तो सबसे पहले मैं जानना चाहूंगी आपके काव्य संग्रहों के बारे में। आपके अभी तक चार काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं 'सन्नाटों के पहरेदार' 'दरीचों से झांकती धूप', 'कदम जिंदगी के' तथा 'राहें मिल गुनगुनाती'। आप अपनी काव्य प्रक्रिया के बारे में तथा कौन से वह विषय हैं जो आपको काव्य लेखन के लिए प्रेरित करते हैं उनके बारे में हमें कुछ बताएं।

डॉ वीणा विज 'उदित' : दुख-सुख जीवन के दोनों पहलुओं में सामंजस्य बिठाने के लिए संवेगों को कागज की नाव पर कलम की पतवार ने संभाले रखा। मध्य प्रदेश की सोंधी मिट्टी की गंध लिए मैं पंजाब के धरातल पर पहुंची और वहां से कश्मीर की वादियों में पनाह पा मेरा काव्य व कथाकार का रूप चेतन अवचेतन प्रकृति की गोद में पनप कर कुसुमित पाल्लवित हुआ। फलस्वरूप मेरी डायरी के पृष्ठों पर ठहरे भाव एक नव रूप पाने को मचल उठे और उदित हुई प्रथम पुस्तक 'सन्नाटों के पहरेदार' प्रकृति के सौंदर्य से भरपूर काव्य संग्रह।

सन् 1998 में भोपाल जाना हुआ, वहां साहित्य अकादमी अवार्ड प्राप्त साहित्यकार श्री नरेश मेहता जी ने मेरी पुस्तक की पांडुलिपि देखो व कविताओं को सराहा तो आत्मविश्वास जाग उठा। उनकी शुभकामनाएं बटोरने के पश्चात श्री सुदर्शन फ़ाकिर जो महान शायर हैं उनसे पढ़वा कर एडिट करवाई। पंजाब के जाने-माने साहित्यकार प्रिंसिपल सुरेश सेठ जी ने भूमिका लिखी और शुभकामनाएं दीं। इसके दो एडिशन आ चुके हैं।

मेरी पुस्तकों के टाइटल ही बताते हैं कि वह किस संदर्भ में लिखी गई हैं। 'कदम जिंदगी के' में जीवन के इर्द-गिर्द व्याप्त दुख-संताप, खुशी-प्रसन्नता आदि संवेदनाएं जीवन को किस रूप में प्रभावित करती हैं, उन सब का विवेचन है। पंजाब कला साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री सिमर सदोष जी ने इसकी प्रस्तावना लिखी है। सुभाष रस्तोगी जी ने इन्हें जुगनू जैसी कविताएं कहा है।

दरीचों से झांकती धूप-मेरी सकारात्मकता की सोच इस पर प्रभावी है। रायपुर के व्यंग साहित्यकार श्री गिरीश पंकज ने इसकी भूमिका में मुझे 'हिंदी कविता को अपनी भाव वीणा से झंकृत करती कवयित्री' कहा है। वीणा की कविताओं में जीवन के अनेक झंझावातों के दर्शन होते हैं। यह महज प्रलाप नहीं वरन अनेक प्रकार की प्रतिरोधात्मक अभिव्यक्ति हैं जो विसंगतियों के खिलाफ मुखरित होती हैं। इन्हें पढ़ कर पाठक इनसे अपना भावनात्मक रिश्ता कायम कर सकता है। यह समष्टिपरक कविताएं हैं। इसी प्रकार चौथा काव्य संग्रह 'राहें मिल गुनगुनातीं।' टाइटल को बोलते ही चेहरे पर मुस्कान आ जाती है। बहुत राम हैं जमाने में, उनको छुपाते हुए या उनसे लड़ते हुए इंसान को गुनगुनाना आ जाए तो जीवन सफल है। लवली यूनिवर्सिटी

के प्रोफेसर डॉ विनोद कुमार कहते हैं 'कविता कहीं एक सुखद अनुभूति दे जाती है : घोर विपदा में भी वीणा आशा के गान सुनाती हैं। वीणा के शब्द प्रति शब्द हृदय में सुभाव भरते हैं। ये सचमुच वीणा-पाणि का वरदान लिए हैं।' स्पष्ट है जीवन की सकारात्मकता को तहे दिल से समर्पित है यह काव्य संग्रह।''

प्रो. सीमा जैन : आपके समग्र लेखन पर यदि दृष्टि डालें तो पता चलता है कि आप साहित्य की अलग-अलग विधाओं में पारंगत हैं अपने काव्य की अतिरिक्त कहानी तथा लघु कथाओं के लेखन में भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है। आप की कहानियों की क्या विशेषता है आप किस उद्देश्य से कहानी लिखती हैं? किस परिप्रेक्ष्य में लिखी हैं आपने कहानियां ?

डॉ वीणा बिज 'उदित' : जी हां कहानी लेखन में मेरी अभिरुचि आरंभ से ही है। समाज में व्याप्त विषमताएं किसी और जगह नहीं आपके आसपास ही घटित होती रहती हैं। जरूरत होती है उन पर नजर रखने और उन्हें एक मुद्दा बनाकर उस पर एक कहानी बुनने की। फिर, मैं तो कहानी पढ़ने की बहुत शौकीन थी। देवकीनंदन खत्री, शरत साहित्य, रवींद्र साहित्य, प्रेमचंद साहित्य, बंकिम चंद्र, विमल मित्र, आचार्य चतुरसेन, वृंदावन लाल वर्मा, अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि लेखकों को पढ़ते रहने से कहानियों को रोचकता को महसूस कर उनमें खो जाती थी। मेरा कथा लेखन वास्तविकता को दर्शाते हुए उसे सही दिशा प्रदान करते हुए सकारात्मक निर्णयात्मक स्थिति प्रदान करता है। पात्र को सही दिशा सुझाता है-सामाजिक परिवेश को देखते हुए। नारी विमर्श मेरी कई कहानियों में परिलक्षित है, मैंने उसे किंचित मात्र भी असहाय नहीं छोड़ा है। सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करते हुए एक स्वस्थ वातावरण की अपेक्षा की है मैंने अपनी कहानियों में।

मेरी लघु कहानियों की पुस्तक भी प्रकाशन के लिए गई है। समाज की विद्रूपताओं को लघु कथाओं में परोसा है मैंने, जो हल्के-फुल्के व्यंग्य को भी लिए चलती हैं। उन में बहुत रोचकता है। कुछ शिक्षात्मक विचार भी प्रस्तुत करती हैं।

प्रो. सीमा जैन : एक महिला लेखिका होने के नाते आपके कथा साहित्य में स्त्रीवादी स्वर है। पिघलती शिला, तुरपाई और अन्य कहानियां और 'मोह के धागे' आपके इन तीनों संग्रहों में, क्या आप नारी विमर्श से प्रभावित हैं?

डॉ वीणा विज 'उदित' : हमारे भारतीय समाज में नारी उत्पीड़न, नारी की असहाय दशा, आज के वैज्ञानिक नवीन युग में भी हमारे गांव, कस्बे, नगर नारियों की दुर्दशा की कहानी कहते हैं। नारी को आधा जहान माना गया है केवल कहने के लिए। अच्छी पढ़ी-लिखी नारी भी अपनी इच्छा से अपना घर, अपने बच्चे और अपने आप को स्वतंत्र नहीं कर पाती है। आस-पड़ोस और प्रतिदिन के कार्य क्षेत्र में उपस्थित स्त्रियां अपना रोना रोती रहती हैं। तो फिर मेरा गद्य लेखन नारी विमर्श से प्रभावित क्यों नहीं होगा? बिल्कुल मैं नारी विमर्श से प्रभावित हूं।

प्रो. सीमा जैन : आपके साहित्य को पढ़कर ऐसा भी लगता है कि आप के विचार एकतरफा नहीं हैं। मानसिक संताप पुरुष व नारी को समान कष्ट देता है आप इस कथन को भी सिद्ध करती हैं कैसे ?

डॉ वीणा विज 'उदित' : सत्य कह रही है आप सीमा जी। मानसिक संताप तो व्यक्ति विशेष को कष्ट देता है फिर चाहे वह नारी हो या पुरुष। समय की दौड़ में समान अधिकार की मांग करती हुई कुछ नारियां नई पीढ़ी की हमारी भारतीयता की धज्जियां उड़ाने में लगी हैं। नारी सशक्तिकरण को वे पुरुषों को प्रताड़ित करने में खर्च करने लग गई हैं। यह किसी भी समाज में उपयुक्त धारणा नहीं मानी जा सकती है। पुरुषों को आदर व प्रेम से अपने समकक्ष करने की अपेक्षा वे उन्हें मानसिक संताप देने में सक्षम हो गई हैं। सचेत होना पड़ेगा समाज को। जहां हम कहते थे बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, आज कहना पड़ रहा है नारी के चंगुल से बेटा बचाओ, नशे से बेटा बचाओ, विदेशी बुखार से बेटा बचाओ। इन नए नारों की हमारे सामयिक समाज को अतिशय आवश्यकता है। नई कहानियां नई समस्याओं से ही उपजती हैं।

प्रो. सीमा जैन : आपका जीवन वृत्तांत पढ़ते समय मुझे पता चला कि आप आचार्य रजनीश (ओशो) की भी शिष्या रही हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण आपके विचारों का अभिन्न अंग है। आपके लेखन में दर्शनिकता का पुट कहानियों को कैसा रूप देता है?

डॉ वीणा विज 'उदित' : पठन व लेखन का सामंजस्य तो साथ-साथ चलता ही है। जहां मैं साहित्य के प्रतिष्ठित लेखकों को पढ़ा वही मैंने विवेकानंद, रमण महर्षि, डॉ राधाकृष्णन, श्री अरविंदो, बुल्ले शाह, हजरत सुल्तान बाहु, महात्मा बुद्ध, स्वामी दयानंद आदि का दर्शन पढ़ा। श्रीमद् भागवतगीता, रामायण, पुराण, सत्यार्थ प्रकाश आदि कई ग्रंथ भी पढ़े। मेरी अभिरुचि इनमें इतनी अधिक बढ़ गई थी कि मेरी खुशकिस्मती कहिए मुझे दर्शनशास्त्र पढ़ाने के लिए स्वयं आचार्य रजनीश ओशो मिले। जिनकी पुस्तकें मैं आज तक पढ़ रही हूं। राहुल सांकृत्यायन अज्ञेय, श्री हरिवंश राय बच्चन, महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, नरेश मेहता आदि भी मेरे पसंदीदा लेखक रहे जिनके उपन्यास मैं पढ़ती रही।

दर्शनशास्त्र की छात्रा होने के कारण पाश्चात्य दार्शनिकों की विचारधाराओं के वेग आते व प्रभावित करते रहते ओशो को शिक्षक के रूप में जबलपुर में पाया जब वह आचार्य रजनीश थे।

दार्शनिकता हमारी प्रज्ञा चक्षु बन हमारे जीवन विवेक का सही मार्गदर्शन करती है। ओशो वर्तमान युग के दार्शनिक हैं। उनसे शिक्षा पा जीने की राह हर परिपेक्ष में सार्थकता के लिए अग्रसर होती है। किसी भी विषय के आधारभूत आग्रह दर्शनिकता की परिपाटी में गहराई की ओर इंगित करते हैं 'वहां पैठते हैं' सागर तल से मोती वाली सीप ढूंढते हैं। केवल देखते ही विवरणात्मक चित्रण नहीं प्रस्तुत करते हैं। मेरी कृतियों में यह दृष्टिगोचर है. ऐसा मैं मानती हूं।

विभिन्न धर्मों का आंकलन जैसे गीता, कुरान, बाईबल, सनातन, बौद्ध, जैन धर्म, जपजी साहिब में तुलनात्मक अध्ययन के रूप में करती हूं। यह बात और है कि मैंने अभी तक उन पर कोई पेपर प्रस्तुत नहीं किया है। सूफी साहित्य में बुझे शाह, हसरत सुल्तान बाहु, दीपक चोपड़ा, रॉबिन शर्मा आदि से मैं प्रभावित हुई हूं। इन सब ने मुझे पाठन में समृद्धि दी है और वह मेरा दृष्टिकोण परिपक्व किया है। एक जीवन बहुत छोटा लगता है। पढ़ने के लिए समय कम है। खुशवंत सिंह भी रुचिकर लगते हैं, काफी खुलकर लिखते हैं। इसलिए सीमा जो, मेरे लेखन में परोक्ष व अपरोक्ष रूप में इन सब का प्रभाव तो रहा ही है।

प्रो. सीमा जैन : **आपकी कहानियां विभित्र स्थानों जैसे कश्मीर, पंजाब, अमेरिका, मध्य प्रदेश की देहाती पृष्ठभूमि से जुड़ी हैं! आपका विस्तृत जीवन अनुभव तथा विभिन्न प्रांतो की संस्कृति के साथ जुड़ाव आप की कहानियों को एक अलग ही रोचकता प्रदान करते हैं। क्या यही कारण है कि आपका कहानियों में इतनी गहराई और जीवन का सार दिखाई देता है ?**

डॉ वीणा विज 'उदित' : जहां कहीं भी मेरी रचनाएं जन्म लेती हैं उनमें वहां की सुगंध और स्वाद होने से उन में पाठक की रुचि जागृत हो उनमें तृप्ति पाती है। मेरी रचनाएं वहां के समाज का दर्पण बनकर वहां की विशिष्टताओं को आपके सम्मुख लाती हैं तभी उनमें इतनी गहराई और जीवन का सार आपको दिखाई देता है।

मध्य प्रदेश की खड़ी बोली, पंजाब की दुआबे, माझे और मालवे की संस्कृति, कश्मीर की उर्दू नजाकत को बोली और तौर तरीके और इन सबसे अलग अमेरिका की जीवन शैली साथ ही प्रवासियों का जीवन-इन सब की आंचलिकता को मैंने अपने लेखन में उतारने का प्रयत्न किया है जिससे वह रोचकता धारण किए हुए है। इसके साथ ही ढेरों देशों में भ्रमण वहां के नैसर्गिक सौंदर्य, सामाजिक परिवेश, संस्कृति, धर्म की समानताएं अचंभे में डाल देने वाली विषमताएं अनायास ही आपकी कलम को भावुकता के सागर में डुबो देती हैं। काव्य सृजन को प्रेरित करती हैं। तो कभी मनोगत आशय को समझकर, गहराई में परख कर एक नई कथा को जन्म दे देती हैं। कई लघु कथाएं भी उनमें से जन्म लेती रहती हैं।

ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के 38 में अधिवेशन में श्री बिंदेश्वर पाठक और स्वर्गीय राजेंद्र अवस्थी आदि ने मेरे पहले कहानी संग्रह पिघलती शिला को वर्ष 2007 का सर्वोत्तम कहानी संग्रह घोषित कर सम्मानित किया तो अविश्वसनीय आत्मविश्वास जागृत हो उठा था। भोपाल में प्रेस कॉन्फ्रेंस में ढेरों सवाल पूछे गए मुझसे। टीवी ने भी इंटरव्यू लिया था। 'साहित्य सर्वोदय' की उपाधि से भी नवाजा गया था मुझे।

जालंधर दूरदर्शन पर ढेरों हिंदी और पंजाबी नाटकों, धारावाहिकों में अभिनय करने से और मध्य प्रदेश के दामन में समेटी खड़ी बोली व ब्रज भाषा अपने आयाम बदलकर माझा, मालवा व दोआबा की रग को भीतर

से रंगती रही। वहीं ग्लोबलाइजेशन भी मेरे लेखन पर हावी रहा। तो सत्य यही है कि मेरा लेखन आंचलिकता को समेटे चलता रहा।

प्रो. सीमा जैन : इन सब के अलावा आपने एक और विधा में अपनी विलक्षण पहचान बनाई है और वह है संस्मरण लेखन। आपके संस्मरण बहुत लोकप्रिय हैं। उनके बारे में अक्सर लोग कहते हैं कि एक बार पढ़ना शुरू करें तो अनायास ही पढ़ते चले जाते हैं। कुछ उन पर भी प्रकाश डालें क्योंकि फेसबुक पर वह लोगों की पहली पसंद बन चुके हैं।

डॉ वीणा विज 'उदित' : सही कहा आपने सीमा जी, कि मेरे संस्मरण फेसबुक पर लोगों की पहली पसंद बन चुके हैं। हिंदी साहित्य की गद्य विधाओं में संस्मरण सर्वाधिक आत्मीय और रोचक विधा है। डॉ हरीश नवल के कथनानुसार 'इस विधा में जहां किस्सागोई का आनंद है वही मानव के मनोविज्ञान और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन भी होता है। इस संकलन में समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, सौंदर्य शास्त्र और साहित्यिक अनुशीलन का ऐसा सौष्ठव गठबंधन है जो इस ज्ञानवर्धक और संग्रहणीय बनाने की क्षमता रखता है।'

मेरे द्वारा प्रस्तुत कश्मीर की वादी के सिने संस्मरणों ने विशेष रूप से लोगों में रोचकता जागृत की है। सबसे रुचिकर बात यह है कि लोगों को लगता था कि वह पढ़ नहीं बल्कि चित्र देख रहे हैं। मेरे लेखन के साथ-साथ हुई चित्रोपमता को वे अभिव्यक्ति का कौशल्य मानते हैं। इससे पाठक बंध जाते हैं और उसी में खो जाते हैं। मातृ भारती साइट वालों ने मुझसे 50 एपिसोड मांगे और आज उनकी साइट पर यह सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली पीस्ट है। कनाडा की प्रसिद्ध पत्रिका साहित्य कुंज ने 25 महीनों में इसके 50 एपिसोड अपनी पत्रिका में प्रकाशित किये और प्रशंसा पाई। यहां भारत में भी पुष्पगंधा, अभिनव इमरोज समय सुरभि अनंत, आगम मोचीआदि पत्रिकाओं ने कुछ संस्मरण समय-समय पर अपनी पत्रिकाओं में दिए हैं। यात्रा संस्मरण तो बहुत लोग लिखते थे लेकिन जीवन के संस्मरण इन्हीं से प्रसिद्ध हुए हैं।

अपनी सहेलियों को भी मैं कोई भी घटना सविस्तार ऐसे मुनाती थी तो सब मेरे आस-पास बैठकर मेरी किस्सागोई को सुनना पसंद करती थीं। इसी कला के फलस्वरुप मैंने अपने संस्मरण छुटपुट अफसानों के रूप में फेसबुक पर देने आरंभ कर दिए थे, सहज और सरल भाषा में। इसे कोरोना काल की देन भी कह सकती हूं। मैं हर शुक्रवार को एक अफसाना लिखती थी फेसबुक पर, जिनकी मांग हुई कि इन्हें और जल्दी लिखा जाए या फिर एक किताब में डाल दीजिए कि हम इकट्टे पढ़ सकें। सो पाठकों की मांग पर छुटपुट अफसाने पुस्तक का जन्म हो गया।

आप सुनकर हैरान होंगी कि लोग इसे अमेजॉन से मंगा कर भी पढ़ रहे हैं और मुझे फोन पर बता रहे हैं कि एक बार हाथ में ले कर पूरी किताब पढ़े बिना चैन नहीं आता। किसी ने तो सारी रात बैठ कर सुबह कर दी पड़ते-पढ़ते। तो समझ जाइए कितने रुचिकर हैं यह अफसाने। मुझे याद आ रहा है जब मैं स्कूल में थी तो देवकीनंदन खत्री की चंद्रकांता पढ़ते हुए मेरा भी यही हाल हुआ था। होता है। ऐसा भी कभी कभी होता है।।

प्रो. सीमा जैन : अक्सर कहा जाता है कि हर सफल व्यक्ति के पीछे एक नारी का हाथ होता है। इसी तरह आज जब आप हर क्षेत्र में सफलता हासिल कर रही हैं तो आप अपनी सफलता का श्रेय किसे देना चाहेंगी? अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि और उनके योगदान के बारे में भी संक्षेप में हमारे पाठकों को बताएं।

डॉ वीणा विज 'उदित' : देखिए, मैं अपनी सफलता को दो भागों में बांटती हूं। पहली बात है समय मिलना व पारिवारिक सुख सुविधा मिलना। तो निश्चित है मेरे पति ने मुझे समय दिया। मैं जब भी लिखने बैठती थी तो कोई भी मुझे डिस्टर्ब नहीं करता था। मेरा लेखन रात के 2:00 बजे या 3:00 तक भी चलता था। मेरी पुस्तकों को छपवाया। मुझे कभी किसी बात के लिए मना नहीं किया। तो सारा श्रेय उन्हीं को जाता है।

मेरे बच्चों ने भी मेरा साथ दिया। मेरे छोटे बेटे रोहित ने मेरी वेबसाइट बनाई और मुझे इंटरनेट का प्रयोग करना सिखाया। कभी भी कोई मुश्किल आई तो लैपटॉप पर उसने अमेरिका में बैठे-बैठे सब कुछ ठीक किया। वहीं बड़े बेटे मोहित ने कविताओं को सुना और मेरा उत्साहवर्धन किया। कभी कुछ ठीक नहीं लगा तो उसमें सुधार करवाया। मेरी कई कहानियों की पहली पाठक मेरी पुत्री स्वाति बन जाती थी। पिघलती

शिला के समय, मेरी हर कहानी को मेरे पति रवि जी भी सुनते थे और अपनी सलाह देते थे। इसी किताब को मैंने बताया ना सर्वोत्तम कहानी संग्रह का इनाम मिला था 2007 में।

वहीं दूसरी बात है लेखन तो इसके लिए मैं अपनी पढ़ने की आदत को सर्वोपरि मानती हूं। मैंने बताया मैं बचपन से सब लेखकों को पढ़ना चाहती थी। मैंने खूब पढ़ा भी हिंदी और अंग्रेजी के उपन्यासों को। लिखने की कला जो सबको अपनी ओर आकृष्ट करती है वह मेरी स्वाभाविक कला है। बाकी तो, कवि या लेखक का कब मूड बन जाए पता नहीं लगता। कुछ हवाई जहाज में, कुछ रेलगाड़ी में, कुछ कार के सफर में तो कुछ बाजार में कविताएं और कहानियां जन्म लेती रहीं। कभी अखबार पर, कभी नैपकिन पर तो कभी कागज के टुकड़ों पर भी कुछ रचनाएं जन्म लेने से बाज नहीं आई। बस यही अफसाना है मेरा।

प्रो. सीमा जैन : आप अनेक साहित्यिक सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं के साथ भी जुड़ी हुई है। कृपया हमारे पाठकों को इस बारे में भी कुछ बताएं। इसी के साथ-साथ बहुत सी साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आपको सम्मानित भी किया गया है। कृपया हमारे पाठकों के साथ इस बारे में भी जानकारी साझा कीजिए।

डॉ वीणा विज 'उदित' : एक कलाकार और साहित्यकार होने के नाते विभिन्न संस्थाओं से जुड़ाव स्वाभाविक है। ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया दिल्ली कि मैं आजीवन मेंबर हूं। सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति अखिल भारतीय संस्था ने कश्मीर महोत्सव में मुझे लेखन हेतु सर्वोत्तम पुरस्कार में पुरस्कृत किया था। पंजाब कला साहित्य अकादमी को आजीवन मेंबर हूं आधा जहां पुरस्कार एवं कला के क्षेत्र में अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत हुई। तत्पश्चात 2019 में सर्वश्रेष्ठ 'विद्यावाचस्पति पुरस्कार' से मुझे सम्मानित किया गया। कन्या महाविद्यालय के शोध पत्रों के मूल्यांकन समिति की भी मुझे पंजाब से सदस्य मनोनीत किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय संस्था महिला काव्य मंच पंजाब की संरक्षक बनकर उसे सफलता की ओर ले जाने के फलस्वरूप 'महिला शिक्षा मंच' की पंजाब की अध्यक्ष बनी और अब राष्ट्रीय महासचिव हूँ।

इनकी तो बहुत लंबी लिस्ट है। इसी प्रकार भारत में और विदेशों में कई संस्थाओं से सम्मानित भी हुई। बचपन में सदा रंगमंच के नाटकों में रहने के कारण, जवानी में कॉलेज के स्टेज के नृत्य और नाटकों में छाए रहने के कारण, फिर 20 वर्ष दूरदर्शन और कुछ फिल्मों में अदाकारी करने के कारण तत्पश्चात साहित्य में सक्रिय होने के कारण ढेरों समाचार पत्रों व कई संस्थाओं से सम्मानित भी होती रही और गेस्ट ऑफ ऑनर भी बनती रही। ग्लोबलाइजेशन के कारण इनकी संख्या में वृद्धि होती रही और होती जा रही

वीणा विज जी को भविष्य में उनके साहित्यिक सफर के लिए अनेकानेक शुभकामनाएं.....

390, अर्बन अस्टेट,

फेज़-II,. नज़दीक गुरुद्वारा जालंधर-144002

मो. 98155-81107

संस्मरण

मेरे प्यार के रंग

-डॉ. निर्मल जायसवाल

प्यार सचमुच सतरंगी झूले की तरह होता है, जिसको प्यार हुआ, वही इसके मोह, मोहब्बत, नफ़रत और बदले की भावना को अनुभव कर सकता है। वैसे प्रेम हकीको में नफ़रत और बदले की भावना कभी भी नहीं हुई और आज मेरे अन्त:श में तो प्यार के किसी अलग एहसास ने जन्म लिया है। इस के एहसास को चाहे कोई अजीब, बेतुका समझे या पागलपन।

लुधियाना में हमारे घर खुली जगह होने के कारण मुर्गी के चूजे, मुर्गे तथा मुर्गियों की भरमार हुआ करती थी, जिससे अंडे हर समय घर में मौजूद रहते थे। हम सभी बच्चे उन को छिलकों समेत चावल और उनकी खुराक खिलाया करते थे, क्योंकि मेरी माँ कहा करती थी कि छिलका समेत चावल खाने से मुर्गियों के अंडों की जर्दी पीली हुआ करती है, जो हमारे लिए स्वास्थ्यवर्धक है और चूजे उनके बच्चे ताकतवर पहलवानों की तरह बढ़ते फूलते हैं।

मेरे चाचा के, मुझसे दो छोटे बच्चे उन मुर्गा-मुर्गियों को पीछा करते दौड़ाए रखते और वे भी कभी जल्दी बच्चों के हाथों नहीं पकड़े जाते। इनमें से ही एक शहतूत की छिटी, पतली डण्डी सा लचकौला, दिखने में कमजोर, पतली पतली लम्बी टाँगे और लम्बी सी गर्दन वाला छोटा मुर्गा था, जो मेरे बुलाने पर अपने पंख फड़फड़ाता, आवाजें निकालता और मेरी हथेली पर पड़े वह चावल-कण टुकड़े या छिलका समेत चावल खाने के लिए दौड़ा आता, जैसे मेरी ही इन्तजार कर रहा हो। अच्छी खुराक के बावजूद वह कभी भी ताकतवर नहीं था हुआ। वह छिटी जैसा लचीला और फुर्तीला तो था ही। हमारे साथ के पड़ोसी बच्चे अगर उससे छेड़खानी करते या तंग करते, तो वह उनके पीछे दौड़ता उन्हें जख्मी भी कर देता था। कोई भी बच्चा उसे दौड़ते को पकड़ नहीं था सका था। मेरे टहनी कहने पर वह दौड़ा आता। यह सिलसिला काफ़ी देर तक चलता रहा। मुझे उसकी आदत ही पड़ चुकी थी और सभी बच्चे भी उसका ख्याल रखते, उसको चोगा डालते रहते।

अपनी फुर्ती और छिटी जैसा सुखा लम्बा होने के कारण उसका नाम ही 'टहनी मुर्गा' पड़ चुका था।

मेरा प्यार उस छोटे से बच्चे मुर्गे 'टहनी' प्रति शायद किसी को चुभ रहा था और ईर्ष्या पनपनी सहज थी, इस लगाव को पड़ोस का एक बदतमीज लड़का ताड़ता रहता था। बच्चों ने कई बार शिकायत भी की थी कि यह लड़का अक्सर कहता होता है-'मैं टहनी की टांगें तोड़ दूंगा'।

वही हुआ-एक दिन मैं स्कूल से वापस आई तो टहनी अपने दड़वे (मुर्गीखाने) में पत्थरों की चोट से घायल लहुलुहान हुआ पड़ा था। कोहराम मच गया। बच्चे अलग चीखते रोने लग पड़े और मेरे ऊपर चुप ही पसर गई। नफ़रत की लम्बी लीक उस पड़ोस के लड़के की तरफ खिंच गई। दसवीं में आते-आते वह टहनी मुर्गा मेरे जहन में से नहीं जा रहा था। मेरे अन्दर भीतर तक वह घर कर गया था। उस के बाद मैंने कभी किसी मुर्गा-मुर्गी की तरफ मुँह नहीं किया। अंडे खाने ही छोड़ दिए।

इस घटना के दो वर्ष पश्चात् जब दसवीं के मेरे पेपर होने वाले ही थे, तब मेरी चाची ने अपने दूसरे बेटे को जन्म दिया। हमारा सारा परिवार इकट्ठा हो रहता था। मेरी आँखें उस बच्चे पर जैसे टिक गई, वह हूबहू 'टहनी मुर्गे जैसा पतला और लम्बी टाँगों वाला कमजोर सा पैदा हुआ था। मेरे मुँह से निकला 'टहनी तू आ गया' और खुशी मेरे मुँह पर झलक पड़ी। मेरी माँ बोले 'यह बेवकूफ पगला गई है, कभी जानवर भी मनुष्य रूप में पैदा हुए ?'

आज वह चचेरा भाई बड़ा जवान हो गया है, परन्तु मैं उसको टहनी कह कर ही बुलाती हूँ और वह उसी तरह फुर्तीला दौड़ता फिरता है।

सच! यह तो प्यार-मोह की इंतहां ही हुई न! जो जानवर और मनुष्य में फ़र्क ही नहीं कर सके..।

मेरे घर मेरी एक पालतू पामेरियन फिमेल है। इसके प्यार की भी भिन्न और अद्भुत कहानी है।

मैं चंडीगढ़ से लुधियाना अपनी ममेरी बहन के घर गई हुई थी। मेरे साथ मेरी बेटी और भतीजा थे। गर्मियों के दिन थे। वहां ही पीछे आँगन में एक कमजोर काली पामेरियन कुतिया ने तीन बच्चे दिए हुए थे, जो मिट्टी में लथ-पथ एक दूसरे से सटे पड़े हुए थे। हमें देखते ही अपनी माँ के पीछे पीछे वह तीनों ही धीरे-धीरे गिरते पड़ते आ गए। तीन पिल्लों में से दो फिमेल थीं। मैंने कालीवाली को

पसंद किया। मेरी बेटी भी कहती कि यह ठीक है-परन्तु पता नहीं कैसे दूसरी दूधिया रंग बाली ने अपना मुँह मेरे पैरों पर रख दिया और वहां बैठे रहते तक दो-तीन घंटों में वह गिरती पड़ती मेरे पीछे ही पीछे रही। उसकी माँ भी उसको अपने पास न आने दे, उसे दुतकारती रहे। काली वाली को अगर मैं पकड़ू वह चूं-चूं करती अपनी माँ के पास चली जाये। पिल्ला उन्होंने किसी ओर को देने का वायदा किया हुआ था। मैंने फैसला कर लिया कि यह सफ़ेद कुतिया ही हमारे घर साथ जायेगी। इक्कीस दिनों की इस कुतिया को भरी गर्मी में हम ए.सी. गाड़ी में चंडीगढ़ घर तक बड़ी मुश्किल से सम्भालते लाए।

धीरे-धीरे वह मेरी बेटी और भतीजे के साथ खेलती, दाँत काटती बड़ी हुई।

एक दिन अचानक मुझे महसूस हुआ, जैसे यह सफ़ेद कुतिया मेरे किसी पूर्वजों में से है और हम परिवार का अटूट हिस्सा है, जो मेरे पास आती, मेरे साथ खिलवाड़ करती, खेलती, चिपटती ही जा रही है। मैं अपनी माँ के साथ बहुत प्यार करती थी, जिंदगी में वह मेरी अंतरंग साथी थी। उसके चले जाने पर मुझे मानसिक तौर पर बड़ा आघात लगा था। मैं उसको विभिन्न जगहों पर, किसीन किसी साधु, सन्त या तान्त्रिकों से पूछती कि वह अन्य अपने जन्म में किस योनी, किस जून में चली गई। कभी किसी पीर से, कभी पंडित से या किसी तांत्रिक से पूछते मुझे जिज्ञासा रहती कि वह कहाँ होगी? कभी कैरम बोर्ड पर दीवा रख आत्मा बुलाने का आवाह्मन करती। मैं बहस करती कि प्यार में इतना आकर्षण है कि वह मुझसे जरूर वार्तालाप करेगी, क्योंकि माँ कोमा में चले जाने पर अन्तिम समय में मुझसे बात न कर सकी थी। काश: पुनर्जन्म हो और मैं उससे मिल पाती।

एक दिन मेरे बुखार पीड़ित होने के कारण, मुझे बैड पर पड़े रहते, वह पामेरियन मेरे सिर पर अपने दोनो पंजे रखे, जैसे मूक दृष्टि से कुछ पूछ रही थी, जब तक मैं ठीक उठ कर तंदरुस्त न हो गई, वह मेरे पास से हिली तक नहीं। उदास मेरे आस-आस पास ही चलती-फिरती रही। मुझे अनुभव हुआ जैसे मेरे आस-पास मेरी माँ का साया चल रहा है। एक बिजली सी कहीं कौंधी इस की जान में कहीं मेरी माँ ही तो नहीं..?

इस का नाम हमने रखा 'कैंडी चंडीगढ़ की 'मिस कैंडी'। अब हमारे सभी की वह जान थी। हमारे घर कोई भी अपरिचित जीव नहीं घुस सकता था। जब हम सभी प्रात: अपने-अपने कालेज स्कूल या ऑफिस चले जाते तो वह इस तरह सोने के लिए चली जाती जैसे हमारे साथ कोई संबंध ही नहीं। अगर अपने समय पर घर न लौटें तो वह सीढ़ियों नीचे आ कर देखने लगती और जवाब तलब करती 'क्यों देर क्यों ??'

मुझे कई बार भ्रम ही नहीं, पक्का विश्वास भी हो जाता कि वह मेरी माँ ही है, जो इस योनि में मेरे पास आई है, प्यार के नये रंग को ले कर। जब भी मैं अपनी बेटी को कहूँ, 'आफताबप्रीत' यह तेरी नानी ही है, तो वह व्यंग्य करती हँसती है 'ममा, इस जानवर में नानी ? वह तो ह्युमन एक इन्सान, एक स्त्री थी..?'

यह कैंडी जिसको प्यार करती है, उसको चाटती मसल कर रख देती है, प्रोफैसर कुलवंत और उनकी पत्नी राज जब मेरे घर आते हैं तो उन को छूने के लिए वह नाच नाच, उछल-कूद कर शोर मचाती, कई तरीकों से भौंकने लग पड़ती-कई तरह की आवाजें निकाल उन पर अपने प्यार का इजहार करती गिर-गिर पड़ती।

हमारी 'कैंडी' जो कभी भी बीमार नहीं हुई, अचानक सर्दियों के दिनों बीमार हो गई, शनिवार-इतवार का दिन, कोई डॉक्टर ना मिल सका। इतवार सुबह 3 बजे के लगभग वह मेरी ही गोद में निढाल लेटी लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी, हम सभी के आँसू निकल पड़े और वह फटी-फटी आँखों से हमें देखती अन्तिम सफर पर चली गई।

इंसानी प्यार इस से उलट है। मनुष्य प्यार का मूल्य चाहता है अगर मूल्य न मिले तो बदले की भावना में उसकी बदनाम करके, बेइज्ज़ती करके, अपमानित कर कर जताना चाहता है- 'देख ले, अगर मेरी या मेरा नहीं तो किसी और के भी नहीं होने देंगे।'

परंतु जानवर का प्यार निश्छल होता है, वह प्यार का जवाब 'प्यार की चुप' के साथ ही देता है और संसार के बेमानी व खुदगर्ज़ी

प्यार में हिस्सेदारी नहीं करता।

आमीन !

+1 416 839 3874.
+9855481289
nirmaljsruna@gmail.com

संस्मरण

मेरी पड़ोसन के कुत्ते

-डॉ. जवाहर धीर

कुछ दिन पूर्व समाचार पत्रों में विमान की सीढ़ियों से उतरते एक, दो, तीन, चार, पांच प्यारे प्यारे, छोटे-छोटे कुत्तों को देखा तो मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ये कुत्ते आखिर घुस कैसे गये विमान में ? विमानों के भी कुछ कायदे-कानून हैं। मैंने फटाफट उस समाचार को पढ़ डाला।

आप भी पढ़िए... ये कोई साधारण कुत्ते नहीं, इंगलैंड की महारानी के कुत्ते हैं, जिन्हें वे यात्रा के दौरान कहीं भी जाते समय साथ ले जाना नहीं भूलतीं। तस्वीर में कभी हम उन प्यारे प्यारे कुत्तों को झांक रहे थे, तो कभी विमान की उन भाग्यशाली सीढ़ियों को, जिन पर कुत्तों के संग महारानी ने भी पांव धरे थे। हमने एक लम्बी सांस ली और मुंह से यकायक निकल गया... हम से महारानी के कुत्ते भले।

सचमुच कितनी विडम्बना है कि हमने तो आज तक विमान तल तक नहीं देखा, हवाई जहाजों की सैर तो दूर मगर महारानी हैं कि कुत्तों को साथ लिए एक से दूसरे देश घूम रही हैं। उनके आराम व देखभाल के लिए कुछ लोगों का दल भी साथ-साथ रहता है। इसीलिए सोचता हूं हमसे तो महारानी के कुत्ते भी भले और कुत्तों की देखभाल करने वाले नौकर भी ।

हमने अपने घर में कभी कुत्ता नहीं पाला शायद इसलिए कि बहुत वर्ष पहले हमारे पड़ोसी के कुत्ते ने मेरे बेटे को काट लिया था और बाद में टीके लगवाने पर हजारों रुपए खर्च हो गए, जो टेंशन मिली वह अलग।

एक दिन हमारे इलाके की एक औरत मैडम निशा अपने कुत्ते को प्रात: काल में नित्य कर्म निवृत्ति के लिए, साथ लेकर टहल रही थी तो तुरन्त मेरे बेटे विशाल ने, जो मेरे साथ ही सैर के मैदान में था, कह डाला... 'पापा इसी कुत्ते ने कल हमारे घर के गेट पर पेशाब किया था...' मैंने तुरन्त बेटे को समझाया... 'चुप... धीरे बोल... आंटी ने सुन लिया तो नाराज हो जाएंगी...'

''क्यों पापा...?' बेटे ने प्रश्न दागा।

मैंने कहा... ' 'इसलिए कि तुमने उनके कुत्ते को कुत्ता कहा है... मैडम निशा कभी बर्दाश्त नहीं करेंगी कि उनके कुत्ते को कोई कुत्ता कह दे... हां... उन्हें जो मर्जी कह दो... बेटे... जिस कुत्ते को पाल रही हैं... वह साधारण घर का कुत्ता नहीं है... इसलिए उसका हक है कि वह जहां चाहे पेशाब करे या...'

हम टहलने लगते हैं तो हमारे कान में मैडम निशा की आवाज पड़ती है जो आधे घंटे से सड़क के किनारे-किनारे अपने प्रिय कुत्ते के साथ टहल रही हैं। जल्दी करो स्पोर्टी... नाऊ डू इट प्जी...। मैडम निशा की बात पर कुत्ता तो ध्यान नहीं दे रहा मगर मेरा बेटा हंस पड़ता है। मुझे उसे फिर डांटना पड़ता है... 'हंसो मत बेटे यह तो मजबूरी है उसकी...

मगर आधे घंटे से आंटी नित्रतें कर रही है और कुत्ता है कि कुछ करता ही नहीं... कहते-कहते वह मुझे कहता है... 'पापा...! हम भी एक कुत्ता रख लें...'

'नहीं बेटे... हमसे यह सब कुछ नहीं होगा...' मेरे समझाने पर वह कारण पूछने लगता है। आखिर बच्चा है न। मैं उसे फिर कहता हूं... 'बेटे... न तो हमसे कुत्तों की शोशेबाजी होगी... और... न ही ड्रामेबाजी... कुत्तों को इंसानों से बढ़िया ट्रीटमेंट देना हमारे बस की बात नहीं है...' विशाल चुप हो जाता है।

मैडम निशा के निकट से गुजरते हुए विशाल उसे बुला लेता है... 'आंटी... गुड मार्निंग... सुमित कैसे हैं...?' आंटी को शायद यह अच्छा नहीं लगा। मुझे लगा कि मैडम निशा से अगर उनके बेटे की बजाय उनके कुत्ते का हाल पूछ लिया जाता तो वह अधिक प्रसन्न होतीं...

फिर भी वह कह देती हैं... 'सुमित तो जल्दी उठता ही नहीं... उसे कई बार कहती हूं.. स्पोर्टी को घुमाने के बहाने तुम भी सैर कर लिया करो मगर.. बच्चे तो बच्चे हैं... मीं करते हैं..' वह फिर स्पोर्टी को ताकने लगती है और कह देती हैं... 'नाऊ डू इट प्जीज... बहुत देर हो गई है भई...'

श्रीमती निशा कही क्यों, अनेक निशाएं हैं जो जब घर से गाड़ी में निकलती हैं तो उनके संग-संग गाड़ी की प्राय: अगली सीट पर उनके कुत्ते विराजमान रहते हैं। हमारे मित्र डॉक्टर आलोक हैं, जिनकी श्रीमती जी को भी कुते पालने का शौक है। एक दिन मैं अपनी मैडम के साथ उनके घर गया तो उनकी श्रीमती जी कहने लग... भाई साहब.....हमारा सोजर... डॉग शो में भाग लेने जा रहा है... आजकल उसकी तैयारियों में जुटी हूं...' वह अलमारी खोलकर एक सुनहरी जंजीर हमें दिखाती हैं।

'यह मैंने डॉग शो के लिए मंगवाई है...' हमारी मैडम को साथ लेकर वो पिछले कमरे में चली जाती है और कहती हैं...

'वन्दना जी... आपको भी अब हमारी सोसाइटी में शामिल हो ही जाना चाहिए... डॉग तो अब स्टेटस सिम्बल हैं और इस सिम्बल के साथ घूमने में मजा भी आता है...'

वन्दना उन्हें बता नहीं पा रही थी कि उन्हें बचपन से ही कुत्तों से नफरत है। मैडम निशा हमारी श्रीमती को उसी कमरे में बनी एक अल्मारी में पड़े विभिन्न प्रकार के देशी-विदेशी शैम्पुओं की शोशियों और साबुनों को दिखाती हुई कहती हैं... 'इंसानों से भी ज्यादा केयर करनी पड़ती है... इनकी...'

हम लौट पड़ते हैं तो हमारे संग-संग जिम्मी नाम का एक कुत्ता भी चलने लगता है जो हमारे पड़ोसी पंडित जी ने अपने ससुराल से लाकर बड़े प्यार से पाला था। जिम्मी आजकल पंडित जी से प्यार कम करता है और मुझसे ज्यादा। चलते-चलते में सोचने लगता हूं... कुत्ते पालना हमारे बस की बात नहीं है, आखिर में कोई भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा का बेटा थोड़े हूं, जिनके पालतू कुत्तों की कीमत ही पांच-पांच लाख रुपए थी। मैं तो जमीन से जुड़ा एक अदना-सा व्यक्ति हूं जिसके पास न तो कुत्तों को खिलाने के खुराक है, न विदेशी शैम्पू और साबुन और न ही इंगलैंड की महारानी-सा हूं, जिसके पास अरबों पौंड की सम्पत्ति है। मेरा और मेरी श्रीमती जी की इन कुत्तों से दूर से ही तौबा।

87, प्रोफेसर कॉलोनी,
बंगा रोड, फगवाड़ा-144401

<u>यात्रा वृत्तांत</u>

अंडर ग्राउंड ट्यूब में धड़कता लंदन का दिल

-डॉ. नीलम सेठी

वो एस तीन शून्य दो वर्जिन अटलांटिक आधा घंटा हवा में ऊभ-चूभ करता, ठंडी सर्द हवाओं में बेपरवाह, नीचे बिछी सफेदी की चादर में हीथ्रो एयरपोर्ट उतर गया और अब मैं सात समंदर पार यूके की धरती पर थी। मायावी लोक सा लग रहा था। हमारा पुत्र एक वर्ष से यूके में है। महाविद्यालय में ग्रीष्मावकाश हुआ। मेरे पति ने कागजी कार्यवाही पूरी की और मेरा लंदन जाने का सपना सच हो गया। हालांकि मैं अपने पति के बिना कहीं जाने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी, लेकिन मन की अज्ञात गुत्थियों को कौन कहे। कहीं 'यूनाइटेड किंगडम' देखने की इच्छा गहरे में होगी। दस घंटे की यह मेरी पहली लंबी हवाई यात्रा थी। 'विंडो सीट ली।' पहली बार मैंने प्रकृति का इतना संभार देखा। सिर्फ जयशंकर प्रसाद और नरेश मेहता के साहित्य में पढ़ा था। साक्षात् दर्शन पहली बार किया। गिरगिट की तरह रंग बदलता आकाश कभी धानी, कभी आसमानी। जब क्रू टीम की सदस्या कुछ खाने को रख जाती तो मजबूरन मुझे खिड़?की से ध्यान कुछ देर हटाना पड़ता और पाश्चात्य भोजन कुछ खाना, कुछ ना खाना पड़ता। आह! बाहर का विस्तार अपूर्व है, अद्भुत है, उसके सामने सारे देश छोटे-छोटे घरौंदे हैं। कलियुग में मनुपुत्र कलपुर्जी का होकर रह गया है। बाहर प्रकृति का विस्तार देखते-देखते कभी मुझे ईश्वर पर प्यार आता तो कभी पूरा शहर लेकर उड़ने बाले उड़न खटोले को देखकर इंसान पर।

खैर दृश्यावली खत्म हुई। मेरा नौनिहाल अपने गंतव्य 'हीथ्रो' पर उतरा। मेरा पुत्र स्वागत को खड़ा था। देखते ही देखते हम पश्चिमी लंदन के हेज इलाके में थे। जलपान की औपचारिकता के बाद वह मुझे 'साउथाल' का चक्कर लगवाने ले गया, जो मिन्त्री पंजाब ही है। ब्रोडवे घूमते आपको लुधियाना के चौड़ा बाजार की याद आती है। मल्टी कल्चरल लोग हैं यहां। अलग-अलग वेशभूषा में गुजर जाते लोग देख कर ऐसा लगता है जैसे चित्रपट पर कोई रोचक सी फिल्म चल रही हो। पर ब्रोडवे है कि सबके लिए सब कुछ उपलब्ध। पांच सप्ताह की लघु अवधि में मैंने कोई बीस स्टेशन कवर किए पर सबका राष्ट्रीय चरित्र लगभग एक जैसा। पूरा देश स्वच्छ, अनुशासित। यदि आपका पालतू कुत्ता किसी को काटता है तो उसका भारी-भरकम हर्जाना आप भरते हैं और अगर वह फुटपाथ पर गंदगी फैलाता है तो आप इस समय स्वयं इस गंदगी को उठाएंगे बिना दूसरों को असुविधा दिए। गलत जगह पार्किंग कीजिए, पचास पाउंड की पर्ची वहां पर लगी मिलेगी। न दें तो धन बढ़कर दुगना, चौगुना होता जाएगा।

समय देवता यूं तो सबको चलाता है। पढ़ाई के साथ हर विद्यार्थी भी कार्यरत है। काम पर रात को शिफ्ट लगना आम बात है। हम किसी गुजराती नवविवाहिता को मिलने गए। रात के भोजन के उपरांत उसे रात बारह बजे से प्रात: चार बजे वाली शिफ्ट के लिए एक बड़ी फूड पैकिंग फैक्ट्री में उतार दिया। उसने गेट से अपना कार्ड अंदर डाला, खुल जा सिम सिम.......और महिला अंदर। यहां रात भर पब्लिक ट्रांसपोर्ट चलती है। बसें और अंडरग्राउंड ट्यूब तो जैसे लंदन की हृदय गति ही हैं। इन्हों के साथ लंदन का जनजीवन धड़कता है। भारत से गई एक नवविवाहिता का शिशु छह महीने का हो गया और उसने अपने पिता को नहीं देखा, क्योंकि पिता रात के बारह बजे काम से आता और प्रात: चार बजे फिर काम पर चला जाता और बच्चा पिता के पास जाने से डरता। यहां समय की कीमत है।

ग्रीनफोर्ड रॉटरी क्लब में मेरा व्याख्यान था। वहां जाने के लिए एक पारिवारिक मित्र को मैंने प्रात: 11:30 का समय दे रखा था. वह 11:30 पर मेरे दरवाजे पर थे और चलने का आग्रह करने लगे। मैंने कहा 10 मिनट बैठिए चाय, जूस लीजिए 11:40 पर निकल सकेंगे। मैंने अपनी कोई मजबूरी बताई। वे तपाक से बोले तो फिर आपने मुझे इत्लाह कर दिया होता कि आप 11:40 पर निकल रही हैं। मैं अपने समय की वैसी व्यवस्था करता। 10 मिनट का कितना मोल! मुझे झेंप हो आई। काम पर जाते समय एक महिला को बस छूट गई। बस क्या छूटी उसके पसीने छूट गए और वह वापस घर को हो ली 'लेट जाने का कोई फायदा नहीं।'

किनसिंगटन में भवन सेंटर में डॉ. नंद कुमार से भेंट हुई। यह भारतीय संस्कृति का केंद्र है। नेहरू सेंटर की प्रमुख दिव्या माथुर रूस यात्रा पर थीं। भेंट न हो सकी। 'इंडिया हाउस' एल्डविच में एक विशेष सभा में अपनी कविताओं की प्रस्तुति की। वहां भारतीय उच्चायोग के मंत्री समन्वय श्री रजत बागची, हिंदी और संस्कृति अधिकारी राकेश दूबे, यूके से तजिन्दर और प्रसिद्ध कथा लेखिका व कवयित्री उषा राजे सक्सेना मौजूद थे।

इसी बीच 'कैंब्रिज ब्लू बुक' में छपे परिचय के आधार पर इंटरनेशनल घोषित कर मेरी यूके यात्रा का स्वाद कुछ बड़ा दिया। फिकलाकेंब्रिज ने यूमैन ऑफ द ईयर 2006

पांच सप्ताह पता ही नहीं नाले और वापसी का दिन आ गया। हीथ्री एयरपोर्ट पर दियार्थर कीपर मेरे पुत्रने भरेल और भरी आंखों से मेरी ओर देखा और बिदा ली। उसके बाद मैं थी, मेरा सामान और गुम्शा जांच की कारवाहियां। यहां आकर लगता है अकेले आए थे, अकेले ही जाना है; संग तो बीच भर का है। रात के दस बजे विमान ने गति पकड़ी। एक घंटा तो नीचे एक ऐसा जगमग दिखता था जैसे सारा देश दीपावली मना रहा हो। बस फिर सब धीरे- धीरे पीछे छूट गया। काले समंदरों का विस्तार दिखने लगा। बीच बीच में कोई छोटा सा जगमगाता टापू अपनी सत्ता जता जाता। कब इंदिरा गांधी एयरपोर्ट आ गया, पता ही नहीं चला। मेरे पति रजनीगंधा के फूल लिए खड़े थे।

सेवानिवृत प्राचार्या

एस. डी. महिला महाविद्यालय गुरदासपुर।

आमंत्रित फैक्ल्टी सॉफ्ट स्किल

जी.एन.ए. विश्वविद्यालय फगवाड़ा, ज़िला कपूरथला।

<u>पुस्तक समीक्षा</u>

मंथन से निकला अमृत : `अनुभव के आलोक में'

-श्रीमती ममता जैन

अपने ही जख्मों को मरहम लगाया करते हैं
दर्द के सायों में खुद को ही सहलाया करते हैं
जख्म पाए हैं जब किस्मत से हमने
किसी और को दोष फिर क्या दें मगर इन जख्मों की दवा हम
अपने हमनुमा और हमसफर से पाया करते हैं
आंसुओ की थी लहरी, मन की फिज़ा जो ठहरी
आंधियां सी बन-बन उठी दर्द-ए-दिल लहरी
मगर चट्टानों से बन खुद ही चट्टान बन टकरा गए
दे मौत को धोखा, ए जिंदगी तुझसे मिलने आ गए
हम भी अब जिद्द पर अड़े हैं
शुक्रिया है उनका जो साथ मेरे खड़े हैं।

पिछले दिनों मुझे डॉ. विनोद कालरा जी की नई पुस्तक 'अनुभव के आलोक में पढ़ने को मिली। उनकी बहुत सी पुस्तकें कविता संग्रह, कहानी संग्रह, एकांकी, आलोचना आदि साहित्य रूप में आ चुकी है। मगर 'अनुभव के आलोक में', यह एक पुस्तक नहीं है, यह दर्द है, ऐसा दर्द जो लेखिका ने स्वयं सहा है, झेला है। लेखिका कुछ इस प्रकार की शारीरिक पीड़ा से ग्रस्त हुई कि अपने दर्द के साथ-साथ उसे अपने अनुभव के रूप में इस पुस्तक के द्वारा हमारे समक्ष रखा है। कुछ बातें होती हैं जो हमें कई सालों तक बेचैन करती रहती हैं या फिर कई समय ऐसा आता है जब हम किसी कष्ट में, किसी समस्या में उलझ जाते हैं। ऐसे समय में हमारे साथ क्या बीता, हमने क्या महसूस किया और उसे समय हमारा हाथ पकड़ने वाला, हमारा मार्ग-दर्शन करने वाला कौन था ? उपदेशक तो बहुत मिल जाते हैं मगर सच्चा साथी, हमारे साथ चलने वाला, हमारे दर्द को समझने और हमारे साथ उसे झेलने वाला और हमें उस दर्द से उभारने वाला कोई कोई होता है। और दर्द से निकलने के बाद जिस-जिस ने हमारा साथ दिया उसका धन्यवाद करने वाला भी कोई-कोई होता है।

किसी का आभार प्रकट करने को नम्र होना होगा,
झुकना होगा किसी के सामने शब्दों को विनम्र होना होगा ।।

और लेखिका ने सभी का व्यक्तित्व इस पुस्तक में लाकर इस बात का प्रमाण दिया कि वह सच में कितने विशाल हृदय की स्वामिनी है। कुछ लोग ऐसे हैं जो लेखिका के साथ अभी भी उनका हाथ थामें साथ-साथ चल रहे हैं और अपने दुख - सुख को सांझा कर रहे हैं। लेखिका ने यह पुस्तक कब लिखी या इसको पूर्ण रूप कब दिया यह तो मैं नहीं जानती लेकिन इस पुस्तक के लिखने की कहानी जो है वह 26 अप्रैल 2019 से शुरू होती है जब लेखिका के सामने उनके शारीरिक स्थिति में कैंसर उभर कर आया। लेखिका जो कॉलेज में अध्यक्ष है, तो कॉलेज या स्कूल में इस तरह के मेडिकल सेमिनार आम तौर पर होते रहते हैं जिसमें छात्राओं को अलग-अलग तरह के शारीरिक और स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों से उनका मार्गदर्शन किया जाता है। तो कुछ दिन पहले जो उनके भी कॉलेज में सेमिनार हुआ जिसमें मधुमेह, हृदय रोग, एड्स, कैंसर आदि विषय पर जो बातचीत हुई उसमें एक दिन अचानक उन्हें कैंसर से संबंधित बातचीत को लेकर मन में कुछ शंका उत्पन्न हुई और वह संदेह सत्य बनाकर इनके सामने आ गया। इस तरह जब आप किसी समस्या को, एक गंभीर रूप लेते हुए अपने सामने देखते हो तो आपका चौंकना और हैरान होना बहुत दूर रह जाता है बल्कि आपके पैरों तले से जमीन निकल जाती है, कि क्या ऐसी स्थिति मेरी हो गई? या ऐसा दर्द अंदर पल रहा है। और इसके बाद उस गंभीर स्थिति के, बीमारी के परिणाम क्या-क्या होंगे जो मुझे झेलने होंगे ऐसे अनेकों अनेक सवाल सामने आकर खड़े हो जाते हैं। यह स्थिति सच में बहुत कष्टदायक होती हैं। बीमारी आ गई है उसको झेलना है यह बहुत छोटे से शब्द है जब कोई बीमार हमारे आसपास भी हमें दिखाई देता है तो हम आम तौर पर उसे सान्त्वना देते हैं मगर जब वहीं स्थिति खुद पर जान पड़ती है तो उस स्थिति का अनुभव उस

स्थिति को भोगना उस स्थिति की वास्तविकता को जानना और उसे जूझना विल्कुल ही अलग हो जाता है। उस समय हम अपने आप को बिल्कूल ही किसी अलग जगह पर खड़ा हुआ पाते हैं। लेखिका भी कुछ ऐसी ही स्थितियों में तुझ रही थी। कैंसर की समस्या उनके सामने आकर खड़ी हो चुकी थीं। उसके बाद टेस्ट, सर्जरी, कीमों यह सब कुछ, फिर घर में लोगों का आना-जाना, उनके सहानुभूति दिखाना। सहानुभूति दिखाने वाले ज्यादा होते हैं और सही मार्ग दिखाने वाले कम और सुख-दुख में हाथ पकड़ने वाले उससे भी कम। अब ऐसे में घर के लोगों का भी दायित्व बढ़ जाता है और परेशानियाँ भी। कई बार हमारे घर के लोग खास तौर पर हमारे लाइफ पार्टनर इन स्थितियों को जानकर हमारे साथ तो खड़े होते हैं मगर उनकी अपनी स्थिति ज्यादा डांवाडोल हो जाती है। जो कर्मधारिणी पूर्ण जीवन अपने परिवार, बच्चों की ढाल बनाकर उनकी देखरेख करती रही, जब वह स्वयं विवश हो जाती है और बिस्तर पकड़ कर अपने लिए ही दूसरों को परेशान पाती है उसे अपना स्वयं का अस्तित्व डगमगाता दिखाई देता है लोगों के बीच रहते हुए भी वह स्वयं को उनके बीच असहाय पाती है। उसे अपना होना बेवजह-सा लगता है तो ऐसे में वह अपने मन को स्थिर नहीं रख पाती।

लेखिका के अपने शब्द हैं। पृष्ठ 30 पर-जब इन सब चीजों से जूझ रही थी, लोगों का तांता लगा हुआ था। ऐसी स्थिति में वह अपने आप से बात करते हुए पुस्तक में लिखती हैं।

कुछ देर बाद सब जा चुके थे। राजीव यानी उनके लाइफ पार्टनर दवाई लेने के लिए नीचे उतर गए। मुझे लगा मेरी जिंदगी एकाकी हो गई। अकेले जरा फुर्सत सी लगी। मैं अपनी पूरी जिंदगी का हिसाब करने में उलझ गई। आखिर में इस नतीजे पर पहुंची कि मैं ठगी गई हूं... खुद से ही.... मैंने कभी खुद की तरफ देखा ही नहीं.... कभी मैं अपने पास बैठी ही नहीं..... नहीं जाना कि मुझे अपने आप से क्या चाहिए क्या खो रही हूं..... क्या पा सकती थी.... कभी मन से कुछ पूछा ही नहीं, बरसों तक अपने परिवार, कार्य स्थल के प्रति समर्पित रही। अपनी ओर से अनदेखी ही रही। पर आज अपने ही सवालों से उलझ रही हूँ..... मुझे लगा कि इस तरह तो जीना ही बेकार है...... मैंने अपने लिए कुछ नहीं किया, अपना ध्यान नहीं रखा और अब....... और बहुत लंबा रिक्त स्थान इस के बाद।

ऐसी स्थिति 10 में से पांच स्त्रियों की है। समय बदल रहा है स्त्रियां जहां अपने करियर को लेकर सजग हैं वहीं वे अब अपनी हेल्थ को लेकर भी जागरूक हुई हैं मगर अभी भी केवल वह पाँच प्रतिशत। अगर आज से हम 20 साल पहले झांकें तो उस समय की हर औरत में आपको लेखिका की झलक आसानी से मिल जाएगी। मैं स्वयं को भी इस स्थिति में रखती हूं। यह पृष्ठ पढ़ कर मुझे भी एक प्रश्न चिह्न अपने आप पर नजर आया कि मैं अपनी जिंदगी के वह बेहद संजीदा, उमंग भरे और जीने वाले वाले साल अपने परिवार, बच्चों और अपने कार्य स्थल पर अर्पण कर दिए, समर्पित कर दिए और आज मेरी जो स्थिति है उस का दोषी कौन ?

40, आम तौर पर जो यह उम्र का पड़ाव है यह स्त्रियों के लिए बहुत ही नाजुक संवेदनशील, परिवर्तनशील पड़ाव है जिसमें स्त्रियों खुद को संभालने की जरूरत होती है लेकिन कामकाजी, वर्किंग वुमन हो होममेकर हो उसे अपने लिए समय कहां ? और ये ओस की बूंदें जमीन पर गिरकर मिट्टी हो जाती हैं। लेखिका की स्थिति से मैं परिचित हूं कि वह कैंसर से जूझी। सर्जरी होने के बाद कीमो ट्रीटमेंट के लिए ऑपरेशन कर छोटा पोर्ट उपकरण है और उसके बाद उन्हें कई तरह के इंजेक्शंस दवाइयां, एंटी फीवर एंटी-वायरस एंटीबायोटिक दी जाने लगी तो ऐसी दर्द निवारक गोलियां कैप्सूल्स लगातार खाने के बाद वह विचलित हो जाती है। लेखिका का कहना है कि उन्हें सुबह से शाम तक मधुमेह, हृदय रोग, कैंसर की कुल 33 दवाइयां खानी पड़ रही थी। ऐसे लगता है कि शायद खाना उनकी जरूरत नहीं रह गई है जीवन जीने के लिए उनकी जरूरत दवाइयां बन गई हैं। घड़ी की सुइयां हर समय टकटकी लगाकर उन्हें समय नहीं बता रही वह उन्हें सचेत कर रही हैं कि इस दवाई का समय हो गया या उस दवाई का समय हो गया और यह समय उन्हें व्यतीत होता नजर नहीं आता एक जगह ठहरा हुआ नजर आ रहा है। कीमोथेरेपी की पीड़ा को लेखिका शब्दों द्वारा नहीं शायद अपनी पीड़ा द्वारा ही लिखा है और ऐसी स्थिति में उनके पति राजीव, छोटा बेटा संयम, बड़ा बेटा मयंक उनके अंदर जीने की प्रेरणा को भरते हैं और उनका साहस बनते हैं। ऐसे ही समय में परख होती है अपनों की, अपनत्व की। वह लोग जो लेखिका के साथ रहे और आत्मीयता का अनुभव करवाते रहे, उन्हें जीने के लिए, आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करते रहे जिनमें प्रोफेसर डॉ. अतिमा शर्मा, श्री चन्द्र मोहन, श्रीमती नीरजा उनके सहकर्मी साथी प्राध्यापक और डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, उनकी पत्नी डॉ. श्रीमती गुरुनाम कौर बेदी, शिमला के प्रोफेसर कुलवंत सिंह पठानिया, उनकी पत्नी डॉ. अनीता, वीना गुलशन दीदी, किरण प्रिया वालिया, स्वर्गीय डॉ. ऋता बावा जिन्होंने किसी के सपने में आकर लेखिका के लिए कुछ शुभ संदेश दिया, डॉ. दीपिका आनंद जिन्होंने पग-पग पर इनका साथ दिया लेकिन पीड़ा का यह सफर अंतिम नहीं था। कहते हैं दुख और समस्याएं अकेले नहीं आतीं वे अपने पीछे-पीछे समस्याओं का काफिला लेकर आती है। कुछ ऐसा ही था कि लेखिका के ऊपर एक के ऊपर एक बीमारियों के प्रहार हो रहे थे, ईश्वर द्वारा लेखिका के साहस की, उनको हौंसलों की परीक्षा थी, वह उनके विश्वास की कमीले पर परखना देखना चाहते थे और विश्व की जीत हुई 2011 में जब लेखिका डॉ. विनोद कालरा जी अपने शरीर के दूसरे भाग को टांग को वापस अपने कार्यस्थल पर पहुंची और उनके महयोगियों ने ही बल्कि इनकी प्राचार्या ने भी उन्हें इस गहरे अवसाद में बाहर निकालने में ना केवल मदद की बल्कि इस जीवन की गाड़ी जो पटरी से नीचे उतर गई थी उसे

वापस लाने में सदद की। आज लेखिका सामान्य लोगों की तरह अपनी पहचान बनाते हुए अपने घर, जीवन, कार्यस्थल, समाज में निरंतर अग्रसर है।

गिरने को होते होते संभालती हूं फिर चलने लगती हूं
यह सिलसिला निरंतर जारी है......
और यह जारी रहना भी चाहिए

पुस्तक के 130 प्रश्नों के सफर में दर्द पीड़ा और अनुभव पीड़ा में लिपटा हुआ अनुभव केवल 50 पेजों पर सिमट गया उसके बाद इस पुस्तक में सफर शुरू होता है आभार कृतज्ञता प्रकट करने का, उनके प्रति जिन्होंने लेखिका के मन मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ी। समस्या के समय हर कोई आपके आसपास बहुत से लोग होते हैं जो आपका हाथ पकड़ते हैं मगर उन्हें याद रखना उन्हें अपने जीवन में स्थान देना और पुस्तक में अंकित करना बहुत कम लोग करते हैं। पुस्तक में 130 पेज में 50 पेज केवल अपने लिए और बाकी के पृष्ठ उनका आभार प्रकट करने के लिए। लेखिका के विशाल हृदय की प्रस्तुति में बहुत से नाम हैं, प्रोफेसर हुकुमचंद राजपाल उसके बाद उनके पिता समान श्री सत्यपाल चड्डा जी, शिक्षा को कर्मधार डॉक्टर ऋता बावा, गुरुवर डॉ. ओम अवस्थी और साथ ही साथ कॉलेज की प्रबन्धकर्तृ सभा के अध्यक्ष श्री चंद्र मोहन जिन्हें लेखिका सूर्य से आलोकित रश्मियों के समान गुणयुक्त, विनम्र, गरिमा में सौम्य और पत्रकारिता के पुरोधा व्यक्तित्व के स्वामी बताती हैं। उनके कार्य से लेखिका बहुत प्रभावित है। प्रोफेसर अतिमा शर्मा जी अत्यंत विनम्र, शालीन, मृदुभाषी, कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार, मेधावी इतने गुणों से परिपूर्ण महिला जिनका अपने जीवन में जुड़ना लेखिका अपना सौभाग्य समझती है। विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी डॉक्टर शीतांशु, कलम के धनी प्रोफेसर सुरेश सेठ जिनके विचारों का कागज पर आ जाना लेखिका के मन को तृप्त करता है। प्रोफेसर हरमहेन्द्र सिंह बेदी जो प्रतिभा के पूरक है, जिज्ञासु प्रवृत्ति और विनयशील हैं। गुरुजनों और विद्वानों से इन्हें स्नेह मिला है और लेखिका इन्हें अपना गुरु और मार्गदर्शक मानती है। डॉ. कुलवंत सिंह पठानिया जिनकी ममता और विश्वास छात्र-छात्राओं को प्रभावित करता है और वह स्वयं भी उनसे मिलने के बाद उन्हें पढ़ने, तराशने और संवारने में अपना पूरा यथायोग्य सहयोग देते हैं। चित्रा दीदी जहां दीदी से ही पता चलता है कि लेखिका का उनके साथ कितना स्नेह रहा होगा। राजी दीदी, शैलेंद्र सहगल, डॉक्टर भवानी सिंह जो समय-समय पर लेखिका का साहस बढ़ाते रहे। इसी लंबी कतार में डॉ. नरेंद्र कौर संधू भी थीं. लेखिका जिनके व्यक्तित्व की सराहना करती है।

इसी कठिन समय के सफर में लेखिका की सखी डॉ गुरजोत, डॉक्टर सबीना बत्रा, डॉ दीपिका, डॉ अनुशोभा, डॉ. रूपिका और उनके परिवार मित्र साथी सब उनके साथ उनका हौसला बनकर, उनका उत्साह बनकर और विश्वास बनकर साथ रहे और उन्हें इस पीड़ा से बाहर निकलने में मदद की। सच में अगर इस प्रकार का समाज आपके आसपास हो, इस प्रकार के मित्र आपके हों, तो आप किसी भी कठिन परीक्षा से पास हो सकते हैं, मौत को भी झुठला सकते हैं और अपने जीवन को निखार सकते हैं। लेखिका ने अपने पुस्तक के पहले भाग में यह कहा कि मैं नहीं जानती थी कि इस अनुभूति को शब्दों में ढाल पाऊंगी या नहीं मगर आज मैं इन शब्दों को लिख रही हूं।

पुस्तक को लिखने से पहले आपकी सोच चाहे कुछ भी रही हो लेकिन सच में मेरा यह मानना है कि इस पुस्तक को लिखना बहुत ही कष्टदायक रहा होगा आपके लिए, क्योंकि आपने जो कष्ट अनुभव किया उसे अपने पन्नों पर उतारा लेकिन इसको पढ़ते समय मैं उस कष्ट को महसूस कर पा रही थी और मुझे कहीं ना कहीं ऐसा लग रहा था कि यह जो इतनी गंभीरता से, गहराई से दर्द को एक-एक पीड़ा को शब्द दर शब्द बांधा गया है। यह आपकी दृढ़ शक्ति और प्रबल आत्मविश्वास, इच्छा है जो आप इस सबसे निकल कर, उभर कर, निखर कर बाहर आई और सभी के लिए एक प्रेरणा स्रोत बनीं। जहां ऐसे हम राही साथ हो वहां कुछ भी नामुमकिन नहीं है। लेखिका को शुभकामनाएं देते हुए मैं चलते-चलते यह जरूर कहूंगी कि लेखिका ने हिमाचल में अपना घर बनाने का जो स्वप्न देखा है उसे जरूर पूरा करें क्योंकि

बड़ी मन्नतों से मांगी ये ज़िंदगी
बड़ी शिद्दत से रची यह कहानी
ना रुके अब कारवां कहीं
बस चलती रहे यूं ही मौजों की रवानी।

-हिन्दी प्राध्यापिका
डी.ए.वी पब्लिक स्कूल,
बी.आर.एस. नगर, लुधियाना।

भारत की विरासत संस्था

कन्या महाविद्यालय, (स्वायत्तशासी)

विद्यालय मार्ग, जालन्धर।

Phone : 0181-2296605, 2296606

E-mail : kmvjalandhar@yahoo.com • Website : www.kmvjalandhar.ac.in